

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

If there is one place on the phase of the earth where all the dreams of living man have found a home from the very earliest days when man begin the dream of existence, it's India, for more than 30 century, the trace of vision, with all its thousand branches and their millions of lives, has sprung from this torrid land, the burning womb of the God's. It renews itself tirelessly showing no sign of decay by Romain Rolland.

हिन्दू विधि की उत्पत्ति एवं स्वरूप
हिन्दू विधि की उत्पत्ति – हिन्दूओं की यह मान्यता है कि हिन्दू विधि दैवी शक्ति से उत्पन्न हुई है। कुछ हिन्दू व्यक्तियों के अनुसार, हिन्दू विधि प्राचीन समय से प्रचलित प्रथाओं और रुद्धियों पर अधारित है। विधि के विकास में प्रथाओं के महत्व को हिन्दू विधि का रूप दिया गया है। हिन्दू विधि की उत्पत्ति के विष्य में निम्नलिखित दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं –

1. हिन्दूओं के टृष्णिकोण के अनुसार हिन्दू विधि एक दैवी विधि है। इसकी उत्पत्ति वेदों से हुई है। प्रचीन समय में ऋषि तथा मुनियों ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति के बल पर ईश्वर के आदेशों के अनुसार हिन्दू ग्रन्थ लिखे तथा समाज का अर्पित कर दिये इसी कारण हिन्दू विधि को ईश्वरीय विधि कहा जाता है।

वहत् आरण्यक 1/4-4 के अनुसार – हिन्दू विधि की दैवी उत्पत्ति है। राजा और प्रजा, शासक सभी इस विधि को मनाने के लिए बाध्य है। ऐसा कहा गया है कि विधि राजाओं का भी राजा है और विधि से बढ़कर कोई भी वस्तु नहीं है। विधि की की सहायता से निर्बल भी सार्वधिक बली का परास्त करता है। अतएव विधि को ही सत्य माना जाता है।

इस संबंध में यह भी कहा जाता है कि हिन्दूओं के बाद के ग्रन्थ जैसे स्मृतियाँ, भाष्य और निबंध भी वेदों में उल्लिखित विधि की व्याख्या करते हैं। अतः हिन्दूओं का यह मत सिद्ध करता कि हिन्दू विधि ईश्वर द्वारा निर्मित की गई विधि है।

2. यूरोपीय न्यायशास्त्रियों के अनुसार – यूरोपियन न्यायशास्त्रियों के अनुसार हिन्दू विधि ईश्वरीय विधि नहीं होती बल्कि यह विधि बहुप्रचलित रुद्धियों तथा लोक रीतियों पर अधारित होती है।

अनेक विद्वानों के अथव परिश्रम एवं अनुसंधान से यह ज्ञात हुआ है कि कुछ स्मृतियाँ भी तात्कालिक रीति रिवाजों पर अधारित थीं तथा कुछ हिन्दू राजाओं और विधिशास्त्रियों के द्वारा बनाये गये नियमों पर अधारित थीं। अतः हिन्दू विधि "वह है जिसका वेदों में पारंगत विद्वानों ने अनेकरण किया, जो वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा अनुकरण किया गया और अचाइयों से पूर्ण द्वेष और राग से रहित चत्त वाले त्योगियों की चेतना द्वारा स्वीकृत है।"

हिन्दू कौन है? – प्राचीन हिन्दू सिद्धान्तों के अनुसार " हिन्दू जन्म से होता है, अनाया नहीं जा सकता है।"

मोरार्जी बनाम एडमिनिस्ट्रेटर जनरल ऑफ मद्रास में कहा गया है कि हिन्दू धर्म में परिवर्तन होने से भी हिन्दू बन सकता है। यदि कोई हिन्दू परिवार से उत्पन्न होता है। तो उसे हिन्दू कहा जायेगा। किन्तु यदि वह हिन्दू धर्म को त्याग कर अन्य धर्म अपना लेता है तो उसे हिन्दू नहीं कहा जा सकेगा। हिन्दू शब्द से अभिप्राय सिद्ध्यु नदी के पूर्व रहने वाले व्यक्तियों से था। जब मुसलमान आक्रमणकारी यहाँ बस गये तो उन्होंने यहाँ के निवासियों तथा अपने में प्रभेद करेन के लिउ इस शब्द का प्रयोग किया। यद्यपि हिन्दू शब्द किसी विशेष धर्म का ही वाचक है तथापि यह सांस्कृतिक एकता का बोधक है।

यह प्रायः कहा जाता है कि हिन्दू जन्म से होता है बनाया नहीं जाता। यह कथन सत्य नहीं है क्योंकि इस कथन के अपवाद भी है। हिन्दू शब्द से तात्पर्य केवल उन्हीं व्यक्तियों से नहीं है जो हिन्दू माता-पिता से पैदा होते हैं वरन् उन लोगों से भी हैं जो हिन्दू धर्म बाद में अपना लेते हैं।

हिन्दू शब्द से तात्पर्य उन सभी लोगों से है जो हिन्दू माता-पिता से पैदा होते हैं और जो हिन्दू धर्म में परिवर्तित हो जाते हैं वे लोग निम्न हैं –

1. धर्म से हिन्दू
2. बुद्ध, सिक्ख, जैन ब्राह्मण, आर्यसमाजी और लिंगायत जो कि मूल रूप में उत्तराधिकारी तथा दत्तक ग्रहण, भरण पोषण अधिनियमों के अन्तर्गत बृद्ध, जैन, सिक्खों को भी हिन्दू शब्द के अन्तर्गत समिलित कर लिया गया है और अब वे इन्हीं अधिनियमों में उल्लिखित कारब्ध से प्रशासित होंगे।
3. वे आदि निवासी जो हिन्दू हो गये हैं।

हिन्दूविधि के मुख्य स्त्रोत और उनका महत्व – प्रचीन मत के अनुसार विधि एवं धर्म में एक अभिनन संबंध था। विधि को धर्म का एक अंग माना जाता था। धर्म के स्त्रोत ही विधि के स्त्रोत होते थे। मनु के अनुसार, वेद, स्मृति, सदाचार एवं जो अपने को टृष्णिकर लगे, ये चां धर्म के स्पष्ट लक्षण माने गये थे। याज्ञवल्क्य के अनुसार – श्रुति, स्मृति, सदाचार तथा जो अपने को टृष्णिकर प्रतीत हों, ये सब धर्म के आधार हैं। याज्ञवल्क्य ने पुनः विधि के ज्ञान के चौदह स्त्रोत बताये हैं चार वेद, छह वेदांग, धर्मशास्त्र, न्याय, पुराण और मीमांसा।

हिन्दू विधि के स्त्रोतों को निम्नलिखित दो शीर्षकों को विभाजित किय जा सकता है—

1. हिन्दू विधि के प्रचीन या मूल स्त्रोत के स्त्रोत हैं जो भस्सरत के ऋषि मुनियों एवं विद्वान पुरुषों ने निर्मित करके हिन्दू धर्म ग्रन्थ में लिखे। मूल स्त्रोत श्रुति, स्मृति, टीका एवं निबंध तथा प्रथाएँ हैं।
 - श्रुति – श्रुति का शाब्दिक अर्थ है "वह जो सुना गया है।" श्रुतियों के विषय में यह पिश्वास प्रचलित है कि वाक्य ईश्वर द्वारा ऋषियों पर प्रकट किये गये थे जो उसी मूल रूप में अंकित हैं। मेन के अनुसार, "श्रुतियाँ हिन्दू विधि की प्रथमिक और सर्वोच्च स्त्रोत हैं। इनमें कानून की अनेका धर्म और धार्मिक रीति रिवाजों पर ज्यादा अल दिया जाता है। इनमें चार वेद – 1. ऋग्वेद 2. युजवेद 3. समावेद 4. अर्थर्वेद तथा छ: वेद हैं – 1. कला 2. व्याकरण 3. छन्द 4. पांक्षा 5. ज्योतिष 6. निरुक्त आते हैं।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

2. **स्मृति** – “स्मृति” का शाब्दिक अर्थ है जो कुछ भी स्मरण में है। “ हमारे ऋषि-मुनियों ने देवी वाणी को सुना और इस देवी वाणी का संकलन उन्होंने वेदों में किया पर फिर भी बहुत कुछ उनके हृदय पटल पर बना रहा। मान्यता यह है कि स्मृतियाँ ऋषि मुनियों की इस स्मृति पर ही आधारित है। स्मृति मुख्य तथा गौण दो प्रकार की होती है गौण स्मृतिया बाद की रचनायें हैं। मुख्य स्मृतियों में धर्म सूत्र तथा धर्म शास्त्र आते हैं। गौतम, बोधायन, वौष्ठ और विष्णु प्रधान सूत्रकार माने जाते हैं तथा मनु याज्ञवल्य, नारद आदि धर्मशास्त्र के प्रमुख रचयिता माने जाते हैं। स्मृतियाँ गद्य और श्लोकों में होती हैं। गद्य स्मृतियों को धर्मसूत्र तथा श्लोक स्मृतियाँ पूर्व की हैं।

स्मृतिकारों में मनु का स्थान सर्वोपरि है। बृहस्पति ने इस समर्थन स्वयं किया है कि स्मृतिकारों में मनु का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि उन्होंने अपनी स्मृति में वेदों के समय के भावों को निरूपित किया है। उसके विरोध में आने वाली स्मृति प्रमाणिक स्मृति आती है जो बहुत महत्वपूर्ण है। स्मृतियाँ हिन्दू विधि की मेरुदण्ड हैं। विधियों के दृष्टिकोण से इन स्मृतियों को सबसे महत्वपूर्ण सीन प्राप्त है। स्मृति की विधि की सबसे बड़ी विधि यह रही है कि वह प्रयोग में आने वाली विधि का सन्चित है। उसमें समाज की आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रखा गया है। इन सूत्रों में मानव कर्तव्यों की विवेचनाकी गई है। इस समय विधि के नियमों का पर्याप्त विकास हो चुका था।

स्मृतियों के रचनाकार मनु याज्ञवल्य, नारद, विष्णु, देवन्न, व्यास, बृहस्पति व कात्यायन हैं। सम्पत्ति, आद्यात, अतिकमाण्ड के मामले होते थे।

भाषा तथा निबंध – यद्यपि विवेदों का कार्य स्मृतियों की व्याख्या करना है, किन्तु निबंधों ने समय की माँग के अनुसार व्याख्या करके मूल विधि को काफी परिवर्तित कर दिया है। सामाजिक आवश्यकता तथा सुविधाओं को सामाजिक प्रथाओं और रीति रिवाजों के अनुकूल होने के कारण भाष्यों तथा निबंधों का आश्रय लिया गया। भाष्य वे हैं जिनमें स्मृतियों की टीका की गई है। समस्त निबंधों में “विज्ञाने” वर द्वारा रचित निबंध मिताक्षरा सबसे अधिक प्रभावी वाली सिद्ध हुआ। परिणामस्वरूप उसमें प्रतिपादित विधि बंगाल प्रान्त को छोड़कर समस्त भारत में व्रचनिलत हो गई। मिताक्षरा याज्ञवल्य स्मृति पर लिखा हुआ सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाष्य है जिसकी प्रतिष्ठा तथा प्रमाणिकता दें। मनु का अधिकार भाष्य निम्नलिखित है –

1. जीतमृतवाहन द्वारा दायभाग
2. विज्ञाने” वर द्वारा याज्ञवल्य स्मृति पर मिताक्षरा
3. मित्र मिश्र द्वारा वीर मित्रोदय
4. वाचस्पति द्वारा विवाद चिन्तामणि
5. चन्द्र” खेर द्वारा विवाद रत्नाकर
6. रघुनन्दन द्वारा परा” र माधव्य
7. श्रीकृष्ण द्वारा दायकम संग्रह
8. देवन्न भट्ट द्वारा स्मृति चन्द्रिका
9. माधवाचार्य द्वारा परा” र माधवा
10. नीलकण्ठ द्वारा व्यवहार मयूख

प्रत्येक मुख्य स्मृति पर अनेकों भाष्य लिखे गये हैं। किसी स्मृति पर अनेक भाष्य का लिखा जाना उस स्मृति की प्रामाणिकता और महत्व का दोतक है। अकेले मनुस्मृति पर असहाय, विष्णु स्वामिन, मेघातिथि गोविन्दराज धार” वर भोज और कुल्लुक ने भाष्य लिखे हैं। कछ महत्वपूर्ण भाष्य निम्नलिखित है –

1. मिताक्षरा – यह याज्ञवल्य स्मृति पर लिखा हुआ सबसे अधिक महत्वपूर्ण भाष्य है जिसकी प्रतिष्ठा तथा प्रमाणिकता दें। भर में मान्य है। बंगाल के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में यह विधि का सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। हिन्दू विधि का वह अंग जो अभी तक अधिकनयम है वहाँ मिताक्षरा के नियमों को प्रमाणिक मानकर लागू किया जाता है। मिताक्षरा की प्रतिष्ठा इस कारण बढ़ गई कि स्वयं मिताक्षरा पर ही बाद में अनेक भाष्य लिखे गये।
2. व्यवहार मयूख – नीलकण्ठ द्वारा सचित भाष्य व्यवहार मयूख पर्याचकी भारत में सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। इसको लोग मित्र मिश्र के द्वारा रचित भाष्य वीर मित्रोदय से अधिक प्रमाणिक मानते हैं।
3. दाय भाग – जीमृतवाहन द्वारा लिखित भाष्य दायभाग बंगाल में सबसे अधिक प्रमाणिक माना जाता है। इसके अतिरिक्त दत्तक विधि पर दत्तक चन्द्रिका कुबेर द्वारा तथा नन्दपाणित द्वारा दत्तक मिमांस लिखे गये थे।

प्रथाएँ एवं रुद्धि – प्रथाएँ हमें ऐसे नियमों का बोध कराती हैं जो किसी निर्वाचन परिवार में या निर्वाचन प्रदेश में अथवा निर्वाचन समुदाय में अधिक दिनों के प्रयोग से निधि का रूप ले लेते हैं। वास्तव में प्रथाएँ स्वयं अलिखित कानून होते हैं। मनु के अनुसार – “पुराने रिवाजों में कानून की शक्ति होती है।

रीति रिवाजों के आवश्यक तत्व –

1. प्राचीनता – प्रत्येक देश और प्रान्त के अति प्राचीन रिवाज, जिनका प्रयोग प्राचीन काल से पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहा है, शास्त्र द्वारा भी समाप्त नहीं किये जा सकते हैं। यह ऐसे रिवाज है जिन्हें एक पीढ़ी उत्तराधिकार में दूसरी पीढ़ी से प्राप्त करती है। रीति रिवाज का प्राचीन होना आवश्यक है। जिससे सह प्रतीत हो कि इस रिवाज को सर्वसाधारण की मान्यता उस विधि के अन्तर्गत प्राप्त है जो उस स्थान य समूह या परिवार की विधि है।
2. निरन्तरता – यदि कोई रिवाज किसी कारणवश कुछ समय के लिए सिर्वित हो जाता है तो वह वही समाप्त हो जाता है। इससे कोई भी अन्तर नहीं पड़ता है कि उसमें रुकावट किसी आकस्मिक दुर्घटना से हुई है या लोगों की स्वेच्छा से। प्रथा का निरन्तर प्रयोग किया जाना परम आवश्यक है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

3. प्रमाण – सामान्य नियम के विरुद्ध किसी रिवाज का भली भौति प्रमाधित होना आव”यक है और ऐसा प्रमाण व्यवहार रूप में नि”चायक होना चाहिए। किसी वस्तु की पूर्व की या सामान्य हो तो इसकी विपरीत सिद्ध करने हेतु प्रमाण देने का भार उस व्यक्ति पर होगा जो उसकी स्थिति को अमान्य करता है।
4. युक्तिपूर्ण तथा संगतिपूर्ण होना – रीति रिवाजों को युक्तिपूर्ण होना चाहिए। यदि वे सामान्य बुद्धि वाले व्यक्ति के विवेक से परे हैं अथवा संगतिपूर्ण नहीं हैं तो वे वेद नहीं माने जायेगे।
5. लोक नीति या नैतिकता कि अनुकूल हो – जो रिवरज लोकनीति और नैतिकता के प्रतिकूल है उन्हें लागू नहीं किया सकता है। किसी रिवाज की अनैतिकता को समझने के लिए सम्पूर्ण सम्प्रदाय के ज्ञान द्वारा उसकी परीक्षा करनी चाहिए, न की केवल ऐ अंग से।
6. विधि के अनुकूल – वेद रीति रिवाजों के लिए अति आव”यक है कि वे किसी स्पष्ट अधिनियम द्वारा निषिद्ध न हो। अतः वे अनुकूल हो।

आई. फ्रांसोमणि बनाम आई. हेमकुमार तथा अन्य में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि ”किसी भी प्रथा को मान्यता प्रदान करेन के लिए तथा न्यायालय द्वारा इसे अपनाये जोन के लिए यह आव”यक है कि प्रथा प्राचीन हो, नि”चत हो तथा युक्तियुक्त हो।

आधुनिक स्त्रोत – हिन्दू विधि के आधुनिक स्त्रोतों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय तथा विधान है। जिन्होने प्राचीन हिन्दू विधि में एक कान्तिकारी परिवर्तन करके एक नई दिंगा दी है। इसके अतिरिक्त साम्य, न्याय तथा सद्विवेक भी हिन्दू विधि के स्त्रोत में माने जा सकते हैं।

साम्य, न्यायन एवं सद्विवेक – न्याय, साम्य तथा सद्विवेक को भी हिन्दू विधि का स्त्रोत माना जाता है। इस प्रत्यय को हिन्दू विधि का स्त्रोत माना जाता है। इस प्रत्यय को हिन्दू विधि में आधुनिक काल में अंग्रेज न्यायाधी”गों ने प्रारम्भ किया था। जिन हिन्दू विषयों के संबंध में धर्म”ास्त्रों में कोई व्यवस्था प्रदान नहीं की गई थी अथवा जहाँ स्मृतियों में दिये गये पाठ परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, वहाँ हिन्दू विधि के समामन्य आधार का ध्यान रखते हुए न्यायालय द्वारा साम्य तथा विवेकपूर्णता को ध्यान में रखते हुए निष्प्रय लिये जाते हैं। जिस विष्याय के संबंध में धर्म शास्त्रों में कोई व्यवस्था प्रदान नहीं की गई थी अथवा जहाँ स्मृतियों के दिये गये पाठ परस्पर विरोधी होते हैं। वहाँ हिन्दू विधि के समामन्य आधार का ध्यान रखते हुए न्यायगत साम्य तथा विवेकपूर्ण बुद्धि से निष्प्रय देने की बात कही गयी है।

गुरुनाथ बनाम कमलाबाई मे सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि हिन्दू विधि में किसी नियम के अभाव में न्यायालय को यह पूण अधिकार है कि वह किसी मामले में न्याय, साम्य तथा सद्विवेक के सिद्धान्तों का सहारा लेकर न्याय प्रदान कर सकते हैं।

विधान – विधि के स्त्रोतों में विधान अथवा अधिनियम मत्तिपूर्ण स्त्रोत है; भारत में ब्रिटि” साम्राज्य की स्थापना के प”चात् समय समय पर प्राचीन हिन्दू विधि के सिद्धान्तों को अधिनियम का रूप दिया गया है। उनमें स”गंधन और परिवधन करके हिन्दू विधि को आधुनिकतम रूप दिया गया था। वर्तमान में विधानमण्डलों को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी रूप में दिया गया था। वर्तमान में विधानमण्डलों को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी भी विधि में आव”यकतानुसार स”गंधन परिवर्तन तथा परिवधन कर सकते हैं।

न्यायिक निर्णय – न्यायिक निर्णयों का भविष्य के मामलों के लिए दृष्टांतस्वरूप समझा जाता है। दृष्टांत केवल विधि का साक्ष्य ही नहीं वरन् उस ज्ञान का स्त्रोत है और न्यायालय इन दृष्टांतों को मानने के लिए बाध्य होते हैं। वास्तव में विधान और न्यायिक निर्णय विधि के स्त्रोत नहीं हैं। उन्होंने तो केवल हिन्दू विधि में परिवर्तन और स”गंधन मात्र किये हैं। न्यायालयों का कार्य केवल विधि का निर्माण नहीं है अपितु विधि की व्याख्या करना और उसको नि”चत बनाना है।

अतः वे न्यायिक निर्णय जो हिन्दू विधि पर न्यायालयों द्वारा घोषित किये जाते हैं, विधि के स्त्रोत समझे जाते हैं।

उधव बनाम बेसकर में यह कहा गया है कि हम जिन विधियों को लागू करते हैं वे न्यायाधीषों द्वारा बनाई हुई विधियाँ हैं। न्यायिक निर्णयों ने हिन्दू विधि को बहुत प्रभावित किया है। न्यायिक निर्णयों के माध्यम ये न्यायालयों ने पूर्व हिन्दू विधि में महत्पूर्ण परिवर्तन किये थे। इन्हीं के माध्यम से स्त्री-धन, दत्तक-ग्रहण, ऋण, इच्छापत्र तथा सहदायिकी सम्पत्ति व उसके हस्तान्तरण की विधियों में अनेक स”गंधन किये गये।

हिन्दू विधि की शाखाएँ

हिन्दू विधि की भिन्न-भिन्न शाखाओं का जन्म भिन्न-भिन्न प्रदेशों में प्रथाओं के कारण हुआ। देशों के सभी क्षेत्र अलग-अलग भाष्यों और निवंधों से शासित होते थे जिनके फलस्वरूप ही हिन्दू विधि की शाखाओं का जन्म हुआ।

हिन्दू विधि की प्रमुख शाखाएँ निम्नलिखित हैं –

1. मिताक्षरा – मिताक्षरा भाष्य के साथ-साथ स्मृतियों का एक प्रकार का निवंध है जो 11वीं शताब्दी के अन्त में अथवा 12वीं शताब्दी के प्रारम्भ के लिखा गया था। मिताक्षरा विधि की शाखा पाँच उप”शाखाओं में विभाजित हुई जो निम्नलिखित है –
 - बनारस की विधि शाखा – इस शाखा को मिताक्षरा शाखा भी कहा जाता है। इस शाखा के अन्तर्गत समस्त उत्तर प्रदेश, दक्षिण विहार उड़ीसा की अधिकाँ” भाग तथा मध्य प्रदेश का कुछ भाग आता है। इस शाखा के निम्नलिखित भाष्यों को मान्यता की जाती है – 1. मिताक्षरा 2. मित्र मिश्र द्वारा लिखित वीर मित्रोदय 3ए दत्तक मीमांसा 4. निर्णसिधु 5. विवाद ताण्डव 6. सुबोधिनी
 - मिथिला शाखा – इस शाखा का प्रचलन उत्तर विहार और त्रिपुरा में है। इस शाखा के अन्तर्गत मिताक्षरा शाखा की विधि मिताक्षरा की विधि से भिन्न है, वास्तव में मिथिला द्वाखांका की विधि मिताक्षरा की विधि है। इस शाखा के निम्नलिखित भाष्यों को मान्यता प्राप्त है – 1. मिताक्षरा 2. चन्द्र”खर द्वारा लिखित विवाद रत्नाकर 3. वाचस्पति द्वारा लिखित विवाद चिन्तामणि 4. स्मृतिसार 5. मदन पर्याप्त

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

- महाराष्ट्र अथवा बम्बई शाखा – इस शाखा को मयूख शाखा भी कहा जाता है क्योंकि व्यवहार मयूख इस शाखा का प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस शाखा के अन्तर्गत महाराष्ट्र, सोराष्ट्र, मध्य प्रदेश का कुछ भाग तथा आन्ध्र प्रदेश का कुछ भाग आता है। इस शाखा में निम्नलिखित ग्रन्थ मान्य है – 1. मिताक्षरा 2. नीलकण्ठ लिखित व्यवहार मयूख 3. वीर मित्रोदय 4. निर्णय सिंधु 5. परा”र माधवय 6. विवाद ताण्डव
 - मद्रास अथवा द्राविड़ शाखा – इस शाखा के अन्तर्गत मद्रास प्राप्त, केरल प्राप्त, मैसूर प्राप्त इत्यादि आते हैं। इस शाखा में निम्नलिखित कृतियों को मान्यता दी जाती है – 1. मिताक्षरा 2. देवन भट्ट द्वारा लिखित सम्ति चन्द्रिका 3. माधवाचार्य द्वारा लिखित परा”र माधवय 4. प्रताप रुद्र देव द्वारा लिखित सरस्वती विलास 5. वीर मित्रोदय 6. व्यवहार निर्णय 7. दत्तक चन्द्रिका 8. दायभाग 9. केवल वदन्ती 10. माध्यी 11. निर्णय सिंधु 12. नारद राज्य 13. विवाद ताण्डव
 - पंजाब शाखा – पंजाब शाखा के अन्तर्गत पंजाब प्राप्त, राजस्थान और जम्मू व क”मीर राज्य आते हैं। यह शाखा रुढ़िजन्य मानी जाती है। इस शाखा में निम्नलिखित को मान्यता है – 1. मिताक्षरा 2. वीर मित्रोदय 3. पंजाबी प्रथाएँ
2. दायभाग – दायभाग शाखा पाँचमी बंगाल और आसाम में प्रचलित है। इस शाखा को बंगाल शाखा भी कहा जाता है। निम्नलिखित ग्रन्थ इस शाखा की प्रमुख कृतियाँ हैं – 1. दायभाग 2. दायतत्व 3. दायकम संग्रह 4. दत्तक चन्द्रिका 5. वोर मित्रोदय
3. व्यवहार मयूख – व्यवहार मयूख महाराष्ट्र बम्बई शाखा का एक प्रमाणिक ग्रन्थ है। महाराष्ट्र, अथवा बम्बई शाखा के अन्तर्गत महाराष्ट्र, सोराष्ट्र, मध्य प्रदेश प्रदेश के कुछ भाग आते हैं।

हिन्दू विधि का शाखाओं का प्रादुर्भाव – हिन्दू विधि की शाखाओं का जन्म और प्रादुर्भाव स्मृतियों की व्याख्या से हुआ। भिन्न भिन्न सीनों के रीति रिवाजों को ध्यान में रखते हुए ही यह व्यवस्था की गई थी।

हिन्दू विधि में विविध शाखाओं के प्रादुर्भाव का सारा श्रेय विभिन्न स्थानीय रीति रिवाजों को ही है। हिन्दू विविध व्यवस्था की मीमांसा करते समय सीनीय रीति रिवाजों को भी समाविष्ट किया गया।

कलेक्टर ऑफ मदुरा बनाम मुट्ट रामामलिगम में ‘यह अभिनिर्णयित किया गया कि हिन्दू विधि के अति प्रचीन स्त्रोत स्मृतियाँ सभी शाखाओं में मान्य हैं। टीकाकारों की विभिन्नताओं के कारण विधि की विभिन्न शाखाओं का जन्म हुआ।

मिताक्षरा तथा दायभाग भाखाओं में अन्तर

मिताक्षरा	दायभाग
1. संयुक्त सम्पत्ति के संबंध	
मिताक्षरा में सम्पत्ति का अधिकार जन्म से ही प्राप्त होता है। अतः पुत्र जन्म से ही पति के साथ पैतृक सम्पत्ति का सहस्यामी होता है।	दायीग में मृत्यु के बाद ही सम्पत्ति पर अधिकार होता है। अतः पिता के जीवनकाल में लड़के को पैतृक सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता है।
सम्पत्ति के बेचने का अधिकार भी पिता का सीमित होता है और लड़का पिता के विरुद्ध भी बँटवारे का दावा कर सकता है।	पिता को हस्तान्तरण का पूर्ण अधिकार होता है। पिता के जीव काल में लड़का न तो बँटवारे का दावा कर सकता है और न पोषण का ही दावा कर सकता है।
संयुक्त परिवार में एक सदस्य की मृत्यु के बाद उसका हिस्सा अन्य लोगों को उत्तराधीनिता से चला जाता है।	प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु के प”चात् उसका हिस्सा उत्तराधिकार के अनुसार उसके उत्तराधिकारियों को मिलेगा जैसे विधा और लड़कियाँ
2. हस्तान्तरण के संबंध में	
संयुक्त परिवार की सम्पत्ति का जब तक विवाहन नहीं होता है तब तक परिवार के सदस्य अपना भाग दूसरे को नहीं दे सकते हैं।	कोई भी संयुक्त परिवार का सदस्य सम्पत्ति के विभाजन के पूर्व अपना हिस्सा बेच सकता है।
3. उत्तराधिकार के संबंध में	
उत्तराधिकार का सिद्धान्त रक्त से संबंधित होता है। लेकिन सजातियों की अपेक्षा निकट समबंधी को अधिक महत्व दिया जाता है।	उत्तराधिकार का सिद्धान्त आध्यात्मिक प्रलाभ अथवा पिण्डदान देने के आधार पर निर्धारित किया जाता है। कहीं पर भगिनी पुत्र को व”ज की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है।
4. फैटम वैलेट का सिद्धान्त	
यह सिद्धान्त मिताक्षरण पद्धति में सीमित रूप में माना गया है।	फैटम वैलेट के सिद्धान्त को दायभाग में पूर्णरूपेण माना गया है।
मिताक्षरा एक टीका है।	दायभाग समस्त स्मृतियों का एक सार संग्रह है।
मिताक्षरा एक परम्परानिष्ठ पद्धति है	दायभाग स”ग्निधित पद्धति है।
5. अन्य अन्तर	
मिताक्षरा पद्धति को कट्टरपंथी पद्धति कहा जाता है।	दायभाग पद्धति एक सुधारात्मक और प्रगति”पील पन्थ वाली पद्धति है।
मिताक्षरा बंगाल को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में सर्वोच्च प्रमाण के रूप में मान्य है	दायभाग बंगाल में सर्वोच्च प्रमाण के रूप में मान्य है।
मिताक्षरा शाखामें पुत्र पिता के विरुद्ध बँटवारे का दावा कर सकता है।	दायभाग में पिता के जीवनकाल में पुत्र बँटवारे का दावा नहीं कर सकता।
मिताक्षरा में सम्पत्ति का अधिकार पिता को सीमित होता है।	दायभाग में पिता को सम्पत्ति का अधिकार पूर्ण होता है पिता सम्पत्ति का हस्तान्तरण करने का पूर्ण अधिकारी होता है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

हिन्दू विवाह एक संस्कार है, सविदा नहीं – प्राचीन समय में हिन्दू विधि के अन्तर्गत विवाह को एक पवित्र एवं महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता था क्योंकि विवाह को उस समय धर्म का रूप दिया गया था। हिन्दुओं के इतिहास में विवाह को संस्कार ही माना गया है।

स्ट्रेज के अनुसार, “वि”व में किसी समाज द्वारा विवाह को इतना महत्व प्रदान नहीं किया गया है जितना कि हिन्दुओं द्वारा किया गया है।

विवाह के द्वारा स्थापित दाम्पत्य जीवन को पहले जीवन भर का अटूट संबंध जाना जाता था। ऋग्वेद के पितृ सत्ता काल में भी विवाह को संस्कार मानकर पवित्र संबंधों की संज्ञा दी जाती थी।

प्राचीन काल में विवाह के समय की जाने वाली धार्मिक पूजा एवं अनुष्ठान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विवाह के समय हिन्दू वर अपनी वधु से कहता है कि मैं तुम्हारा हाथ सौभाय के लिए ग्रहण करता हूँ तुम अपने पति के साथ ही वृद्धावस्था की ओर हो, सृष्टिकर्ता, न्याय तथा बुद्धिमानों ने तुमकों मुझे सौप दिया है।’

इसी प्रकार ऋग्वेद के मन्त्र के अनुसार हिन्दू वर वधु से कहता है कि तुम मेरे वीर पुत्रों की माँ बनो, ई”वर में श्रद्धा रखों, तुम अपने पति के घर में रानी बन कर रहों। समस्त देवी देवता हमारे हृदयों को मिलाकर एक कर दे।’

हिन्दू विवाह के उस अटूट संबंध को किसी भी स्थिति में किसी पक्ष को तोड़ने की आज्ञा नहीं थी। विवाह को हिन्दू धर्म के दस संस्कारों में अंतिम संस्कारों के रूप में मान्यता दी गई थी। इस प्रकार पवित्र और उच्च संस्कारों वाले विवाह में तलाक या संविदा का कोई स्थान नहीं था।

ए.बनाम बी. तथा गोपाल कृष्ण बनाम बेन्कटसर के वादों में बम्बई तथा मद्रास उच्च न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया की “हिन्दू धर्म में विवाह का महत्व इस बात से स्पष्ट होता है कि उसे हिन्दुओं के दस संस्कारों में से एक प्रधान संस्कार माना गया है। यह शरीर को उसके व”ानुगत दोषों से शुद्ध करता है। विवाह एक धार्मिक आव”यकता है, यह भौतिक वासनस का साधन नहीं है।

विवाह वर के द्वारा कन्या को स्त्री रूप में ग्रहण करेन की स्वीकृति है। विवाह में कन्या उसके संरक्षक द्वारा वर को दान में दे दी जाती है। विवाह सभी जातियों के लिए आव”यक माना गया है। विवाह का उददें”य उन तीन ऋणों में से एक से बंधनमुक्त होना है जिसके बंधन में प्रत्येक हिन्दू रहता है। ये तीन ऋण हैं देवऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण। देव ऋण से मुक्ति यज्ञ करने से होती है, ऋषि ऋण से मुक्ति पाने के लिए वेदों का उद्धयन आव”यक है तथा पितृ ऋण से मुक्ति पुत्र उत्पन्न करने से उद्धार पाना है। पुत्र का अर्थ नरक से त्राण देने वाले से होता है। पुत्र श्राद्ध इत्यादि द्वारा पिता की आत्मा को नरक से मुक्त करता है। इसलिए कहा भी गया है कि अपुत्रवान की गति नहीं होती। पुत्र प्राप्ति के लिए विवाह आव”यक है। धार्मिक अनुयठान करने के लिए भी पत्नी आव”यक है। इन सब कारणों से ही हिन्दू विवाह का आव”यक माना गया है। अतः हम यह कह सकते हैं कि हिन्दू विवाह एक संस्कार होता है जो कि पवित्र एवं दैवी बंधन भी है। विवाह पुत्रोत्पत्ति, पितृ ऋण से उन्मुक्त होने, धार्मिक और आध्यात्मिक कर्तव्यों का पालन करने के लिए भी परम आव”यक है।

विवाह एक अनुबंध के रूप में – प्राचीन रोमन विधि में विवाह को एक अनुबंध माना गया। उसके अन्तर्गत स्त्री पुरुष स्वच्छा से विवाह एवं विवाह एवं विवाह विच्छेद कर सकते थे। उस समय विवाह के लिए किसी भी धार्मिक या न्यायिक अनुष्ठान एवं कर्तव्यों का पालन करना आव”यक नहीं था।

किनतु हिन्दुओं में विवाह को अनुबंध नहीं माना गया है। विवाह को एक पवित्र संस्कार माना गया है, वैवाहिक बंधन के लिए संविदा या सिविल संविदा को इसलिए भी अमान्य किया गया था कि उसके धार्मिक और संस्कारात्मक रूप के कारण, पति पत्नी के स्वेच्छा और सहमति का पूर्ण रूप से अभाव था, क्योंकि कन्या के पिता या किसी मान्य संरक्षक का कन्या को यह पवित्र कर्तव्य था कि व कन्या को उपर्येक वर के हाथों सरोप दे। कन्या इस समर्पण को कन्यादान माना जाता है। मनु के अनुसार, विवाह में कन्या एक ही बार दर जाती थी और वह जीवन पर्यंत उस उस व्यक्ति की पत्नी बनी रहती थी जिसकों वह दी जाती थी। इसी प्रकार वर पक्ष की ओर, वर के पिता या मान्य संरक्षक उस संबंध को स्वीकार करते थे। इसी प्रकार वर पक्ष की ओर, वर के पिता या मान्य संरक्षक उस संबंध को स्वीकार करते थे। वर और कन्या नाम मात्र के प्रतिनिधि होते थे। विवाह के प”चात पत्नी को धर्मपत्नी माना जाता था। अंग्रेजी शासनकाल में भी न्यायालयों के द्वारा यह निर्णीत किया जा चुका है कि विवाह के पक्षकारों की इच्छा का विवाह में कोई महत्व नहीं है। अतः हिन्दू विवाह से पति पत्नी में एक अविच्छिन्न हो जाता है जो किसी भी प्रकार से समाप्त नहीं हक्कया जा सकता।

अतः हम कह सकते हैं कि हिन्दू विवाह एक पवित्र एवं उच्च कर्तव्य होता है। यह उपबंध नहीं है।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में विवाह संबंधी सारी विधियों को संहिताबद्ध कर दिया गया है। इस अधिनियम द्वारा विवाह विधि में कान्तिकारी परिवर्तनों द्वारा विवाह को अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और पिनियमत किया गया है। इस अधिनियम और सौधान अधिनियम द्वारा निम्नलिखित कान्तिकारी परिवर्तन किये गये हैं –

1. एकोदर संबंध को मान्यता दी गई है।
2. सपिण्ड और प्रतिषिद्ध संबंधों में सगे, सौतले, नाजायज या गोद लिये गये संबंधों को भी रामिल किया गया है।
3. शून्य और शून्यकरणीय विवाहों से उत्पन्न हुई सन्तानों को वैध करार दिया गया है और इस प्रकार उनकों कानूनी संरक्षण प्रदान किया गया है।
4. पीडितपक्ष के भरण पोषण खर्च और बच्चों की अभिरक्षा के संबंध में महत्वपूर्ण व्यवधा की गई है।
5. न्यायिक पृथक्करण विवाह विच्छेद और तलाक की सुविधाये और व्यवस्था की गई है।
6. न्यायिक पृथक्करण विवाह विच्छेद और तलाक की सुविधाये और अधिकार प्रदान किये गये हैं।
7. वह विवाह को और अधिनियम द्वारा उपर्युक्त विवाह संबंधी विभिन्न शर्तों के उल्लंघन को दण्डनीय अपराध घोषित किया गया है।
8. तलाक के बाद पुनर्विवाह की अनुमति प्रदान की गई है।
9. अन्तर्जातीय विवाह को वैध घोषित किया गया है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

10. सपिण्ड रि”ता का क्षेत्र माँ के संबंध में तीन पीढ़ियों तक और पिता के संबंध में पाँच पीढ़ियों तक सीमित क्षेत्र में वैवाहिक संबंध स्थापित करना वर्जित किया गया है।
 11. प्रतिषिद्ध या वर्जित संबंधों को परिभासित करते हुए उनके बीच विवाह संबंध स्थापित करना वर्जित किया गया है।
 12. विवाह में संरक्षक का कार्य करने वाले व्यक्तियों के संबंध में रि”तेदारों का दायरा बहुत विस्तृत कर दिया गया है।
 13. अभित्याग, दुँ”चरित्र, व्याभिचार, कूरता आदि व्यवहारों तथा असाध्य कोड़ आदि बीमरियों को तलाक का आधार बनाकर तथा एक वर्ष के बाद आपसी सहमति से तलाक प्राप्त करने का आधार बनाकर तथा एक वर्ष के बाद आपसी सहमति से तलाक प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करके तलाक को अत्याधिक सरल और सुविधाजनक बना दिया गया है।
 14. विवाह के पुजीयन की भी व्यवस्था की गई है।
 15. विवाह के किसी भी पक्ष के प्रथागत कर्त्यों और संस्कारों या उत्सवों द्वारा विवाह सम्पत्ति किये जाने को मान्य यिका गया है।
 16. सगोत्र विवाहों को मान्यता दी गई है।
 17. विवाह भेग के प”चात् संततियों की रक्षा के लिए नियम बनाये गये हैं।
 18. शून्यकरणीय विवाह के संबंध मेनपुस्कता और कपट के आधारां को विस्तृत किया गया है।
 19. सन्तानों की वैधता के उपबंधों को स्पष्ट किया गया है।
 20. वेवाहिक कार्यवाहियों को शीघ्रता से निपटाने का उपबंध किया गय है।
 21. विवाह से तीन वर्ष की अवधि में विवाह विच्छेद के लिए कोई आवेदन दायित्व न कर सकने के उपबंध को सं”ोधित करके उक्त अवधि को 1 वर्ष कर दिया गया है।
 22. विवाह विच्छेद की डिकी तथा पुनर्विवाह के बीच एक वर्ष का अन्तराल होन की अवधि संबंधी उपबंध को समाप्त कर दिया गया है।
- अतः हम कह सकते हैं कि विवाह के विभन्न उपबंधों का इस अधिनियम द्वारा स्पष्ट और सरल बना दिया गया है।

विवाह की परिभाषा – विवाह स्त्री एवं पुरुषों के मध्य वह पवित्र संबंध होता है जिसे कानून या प्रथा द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। विवाह के पूर्ण होने पर स्त्री एवं पुरुष के मध्य संबंध पति एवं पत्नी के रूप में हो जाता है जो एक दूसरे के प्रति अधिकार एवं कर्तव्यों को समावैत करते हैं।

विवाह की पद्धतियाँ – हिन्दू विवाह की पद्धतियाँ अथवा उसके प्रकारों के संबंध में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में कोई प्रावधान नहीं किये गये हैं पुरानी हिन्दू विधि की पद्धति में आठ प्रकार के विवाह मान्य थे। इन पद्धतियों में 4 मान्य पद्धतियाँ थीं तथा 4 अमान्य पद्धतियाँ थीं।

मान्य पद्धति में विवाहित स्त्री को पत्नी कहा जाता था तथा उसे समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था।

1. मान्य पद्धतियाँ

- ब्राह्म विवाह – इस प्रकार के विवाह में वधू का पिता स्वयं किसी वेद पढ़े हुए सदाचारी सुयोग्य वर को अपने घर बुलाकर उसकी पूजा करता है और वधू को सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से सजाकर वर के हाथों में वधू को सौंपकर कन्यादान करता था। कन्यादान न तो कोई व्यवसाय था और न उसका कोई प्रतिफल ही वर वधू के पिता से स्वीकार करता था। यह विवाह पूर्ण रूप से पिता द्वारा अपनी पुत्री का दान है। यह विवाह आज भी प्रचलित है।
- दैव विवाह – इस प्रकार के विवाह में वर वधू के पिता के साथ यज्ञ में पुरोहित का कार्य करता था और वधू का पिता शल्क के रूप में वधू को वर के हाथों में साप देता था। यह कार्य निन्दनीय नहीं माना जाता था।
- आर्ष विवाह – इस प्रकार के विवाह में वधू का पिता वर से दो गायें या एक गाय और एक बैल धर्म कार्य के लिए लेता था और उसके बदले अपनी कन्या को वर को सौप देता था।
- प्रजापत्य विवाह – इस प्रकार के विवाह में वधू का पिता यह कहते हुए कि तुम दोनों साथ-साथ धर्माचरण करों अपनी कन्या को वर के हाथों में सौप देता था।

2. अमान्य पद्धतियाँ

- असुर पद्धति – इस पद्धति में वर अपनी इच्छा से वधू और वधू के नातेदारों को इतनी सम्पत्ति देकर जितनी वह दे सकता है, वधू को प्राप्त करता है तो वह विवाह असुर विवाह कहलाता है। यह प्रथा दक्षिणी भारत में शूद्रों में प्रचलित है। यह पद्धति एक प्रकार की क्य विक्रय की पद्धति है। इस प्रकार कि विवाह पद्धति के बारे में यह मत है कि इसमें लड़की को बेच दिया जाता है। कन्या का पिता कन्या के विवाह में जो शुल्क पाता था व उसका प्रतिफल था। हिन्दू आचार्य ने इस भौति के विवाह का कभी भी अनुमोदन नहीं किया है आर हिन्दू समाज में इस विवाह को सदैव हेय दृष्टि से देखा जाता रहा है।
- गान्धर्व विवाह – इस पद्धति में एक कन्या का अपनी स्वेच्छा से अपने प्रेमी के साथ गठबंधन, जिसका जन्म वासना से होता है और जिसका ध्येय संभोग हैद्व गान्धर्व विवाह कहलाता है। मिश्र के अनुसार – “जब वर वधू आपस में स्वेच्छा से विवाह बंधन में यह कहकर तुम मेरे पति हो बैंध जाते हैं तो उसे गान्धर्व विवाह के नाम से पुकारा जाता है। इस विवाह में भी अन्य विवाहों की भौति वैवाहिक अनुष्ठानों का सम्पन्न करना आवश्यक है। इस प्रकार का विवाह दुष्प्रत्यक्ष तथा शकुन्तला का हुआ था। क्षत्रियों में गान्धर्व विवाह का काफी प्रचलन था।
- राक्षस विवाह – इस विवाह पद्धति के अन्तर्गत कन्या के पक्ष वालों की हत्या करके या उनका अंगछेदनादि कर और गृह अथवा द्वार आदि को तोड़कर समहायता के लिये चिल्लाति तथा रोती हुई कन्या का बलात अपहरण करके विवाह किया जाता है।
- पै”गच विवाह – यह विवाह अति निन्दनीय माना गया है। इस विवाह के अन्तर्गत सोई हुई, मद आदि समत अथवा विकृत मस्तिष्क वाली कन्या के साथ मैथुन करके विवाह किया जाता है।

उपरोक्त आठों मान्य व अमान्य विवाह पद्धति को आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

महाराज कोल्हापुर बनाम सुन्दरम अद्यर में कहा गया कि आठ विवाह पद्धतियों में असुर विवाह श्रेष्ठ है। अन्य सभी पद्धतियाँ हेय दृष्टि से देखी जाती हैं तथा वे अप्रचलित हो चुकी हैं।

विवाह के लिए आव”यक अनुष्ठान – उपरोक्त विवाह के लिए निम्नलिखित अनुष्ठानों का पूर्ण किया जाना आव”यक होता है –

1. पवित्र अग्नि के सामने मन्त्रों का उच्चारण
2. अग्नि की सात परिकमा पति व पत्नी द्वारा एक साथ किया जाना आव”यक है

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत भी यह उपबंधित किया गया है कि विवाह किसी भी पक्ष में प्रचलित धार्मिक कृत्यों द्वारा सम्पन्न किया जाता है किन्तु जहाँ सप्तपदी की प्रथा हो वहाँ उसी समय विवाह पूर्ण माना जायेगा जेसे ही सातवीं परिकमा पूरी होती है।“

हिन्दुओं में विवाह होम विवाह का प्रमुख अनुष्ठान है। अग्नि विवाह संस्कार की दैवी साक्षी है। मन्त्रों के उच्चारण के साथ पति व पत्नी को सात परिकमा करते हैं जल की आहुति देने के साथ साथ प्रार्थनाएँ भी की जाती हैं।

विवाह का पंजीकरण – प्राचीन समय में विवाह का रजिस्ट्र”न कराने की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। विवाह सं संबंधित समस्त धार्मिक अनुष्ठान एवं कृत्य विवाह के प्रमाण होते थे। किन्तु अब हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत विवाह के प्रमाण की युविधा के लिए, राज्य सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह इस संबंध में नियम बनाकर हिन्दू विवाह रजिस्टर रखे और इस रजिस्टर में बनाय गये नियमों के मुताबिक विवाह के पक्षकार विवाह का पंजीकरण कराये। राज्य सरकार आव”यकता पड़ने पर यह भी उपबंधित कर सकती है कि राज्यों में या राज्य सरकार आव”यकता पड़ने पर यह भी उपबंधित कर सकती है कि राज्यों में या किसी विंग्ट भाग में विवाह का पंजीकरण कराना अनिवार्य होगा और नियम का उल्लंघन करेन वालों को 25 रुपये तक जुर्माने की सजा दी जा सकती है।

हिन्दू विवाह रजिस्टर हर उपयुक्त समय पर निरीक्षण के लिए खुला रहेगा और उसमें उल्लिखित प्रविष्टियाँ साक्ष्य में मान्य होगी। उनकी प्रमाणित प्रति निर्धारित शुल्क देकर प्राप्त की जा सकेगी।

सजातीय विवाह में अनुलोम विवाह तथा प्रतिलोम विवाह – पुरानी हिन्दू विधि में सजातीय विवाह की वैधता के लिए तीन निम्न शर्त रखी गई थी

1. पक्षकार सजातीय अर्थात् एक ही जाति के हो
2. पक्षकार प्रतींद्व संबंध के अन्तर्गत न आते हो तथा एक
3. विवाह धार्मिक रीति से सम्पन्न किया जाय।

अति पूर्व काल में अनुमोलन तथा प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाहों की परम्परा प्रचलित थी।

अनुमोलन विवाह – इस विवाह में वर उच्च जाति का होता था तो वधू निम्न जाति की होती थी। ऐसे विवाहों को मान्य किया जाता था। जैसा कि मनु यज्ञवल्क्य, व्यास और भिताक्षरा की लिखित हिन्दू विधि व्यवस्थाओं से प्रकट होता है। गुलाबवती बनाम जीवनलाल बंबई 32 में व”य वर और शूद्र कन्या या ब्राह्मण वर और शूद्र कन्या के विवाह को वैध ठहराया था। अनुलोम विवाह से उत्पन्न पुत्र सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होगा। किन्तु इसके विपरीत, इलाहबाद और मद्रास उच्च न्यायालयों ने यह निरुपित किया है कि अनुलोम विवाह वैध नहीं है क्योंकि नियमानुसार विवाह एक ही जाति में होना चाहिए।

प्रतिलोम विवाह – इस विवाह में कन्या उच्च जाति का होती थी तो वर निम्न जाति का होता था। ऐसे विवाहों को मान्य किया जाता था। न्यायालयीन निर्णयों से भी ऐसे विवाहों को अवैध घोषित किया गया था। यद्यपि ऐसे विवाहों को भी अति पूर्व काल में मान्यता प्रदान की जाती थी, किन्तु बाद में समय में जब जाति-प्रथा कुछ कठोर हो गई तो प्रतिलोम विवाह को समाप्त कर दिया गया और इसे अवैध घोषित किया जाने लगा।

वैध विवाह की अनवार्य शर्तें – वैध विवाह कि लिए अनिवार्य शर्तों का उपबंध विवाह विधियाँ अधिनियम 1976 द्वारा स”गोधन हिन्दू विवाह अधिकन्यम 1955 की धारा 5 के अन्तर्गत निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है –

1. एक विवाह – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 5(i) के अन्तर्गत यह उपबंधित किया गया है कि विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से न तो वर की कोई जीवित पतनी हो ओर न वधू का कोई जीवित पति हो।

माइल्स अनाम चिलतन के बाद में यह निर्धारित किया गया है कि प्रथम विवाह के पक्षकार के जीवित रहने पर कोई भी दूसरा विवाह विधि के प्रतिकूल तथा निष्प्रभ होगा, चाहे वह दूसरा विवाह भारत के बाहर ही क्यों न किया गया हो। विवाह का पक्षकार उस द”गा में बहु विवाह का उपराध करता है। वाहे विवाह संसार के किसी भी कोन में किया गया हो।

शर्त उल्लंघन के लिए दण्ड – धारा 11 के अनुसार इस शर्त के उल्लंघन करेन वर विवाह अकृत एवं शून्य हो जायेगा। दूसरे धारा 17 के अनुसार जो भी पक्षकार इस शर्त का उल्लंघन करेगा, वह भारतीय दण्ड संहिता की धारा 494 एवं 495 के अनुसार दण्ड का भागी होगा। अब प्र”न यह उठता है कि क्या विवाह का पक्षकार किसी दूसरे पक्षका को निषेधाज्ञा द्वारा विवाह करने से रोक सकता है।

वरदराजन बनाम स्टेट ऑफ मद्रास में यह मत व्यक्ति किया गया कि किसी विवाह के पक्षकार को बहु विवाह के अपराध के लिए तभी दण्डित किया जा सकता है, यदि प्रथम विवाह धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से सम्पन्न किया गया हो।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

प्रियलता बनाम सुरे”¹ में कहा गया कि बहु विवाह का अपराध तभी पूर्ण माना जायेगा जबकि बहु विवाह के समय विवाह का दूसरा पक्षकार जीवित हो।

2. चित्त विकृति – चित्त विकृति या अमूढ़ता के संबंध में विवाह विधि अधिनियम, 1976 की धारा 5(2) में यह स्पष्ट किया गया है कि विवाह के समय विवाह का कोई पक्षकार –
- मस्तिष्क विकृति के परिणामस्वरूप एक मान्य सहमति देने के योग्य नहीं है अथवा
 - यदि सहमति देने के योग्य है, किन्तु वह इस प्रकार की मानसिक अव्यवस्था से पीड़ित है अथवा इस सीमा तक पीड़ित है कि विवाह तथा सप्ताह उत्पत्ति के योग्य है अथवा
 - पागलपन के दौरे से बार बार पीड़ित न रहता हो।
 - जो व्यक्ति बौद्धिक शर्वित में इत्ना कतजोर हो कि वह सही बात न समझ सकता हो।

पारकर अनाम पाकर में कहा गया कि इस धारा में विवाह के समय का अर्थ यह होता है कि यदि पक्षकार विवाह के समय स्वरूप मस्तिष्क थे, किन्तु बादमें अस्वरूप मस्तिष्क अथवा पागल हो गया है तो इस बात से विवाह पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

शर्त के उल्लंघन के लिए दण्ड – इस शर्त का उल्लंघन किए जाने पर इस अधिनियम की धारा 12 के अनुसार विवाह शून्यकरणीय हो जाता है।

3. विवाह की आयु – बाल विवाह अधिनियम 1978 के सुगम्भान के फनस्वरूप व विवाह के समय वर की आयु 21 वर्ष तथा वधू की आयु 18 वर्ष होना अनिवार्य है।

अतः हिन्दू विवाह की वैधता के लिएयह अवा”यक है कि विवाह के समय वर की आयु 21 वर्ष तथा वधू की आयु 18 वर्ष हों।

शर्त के उल्लंघन के लिए दण्ड – इस शर्त का उल्लंघन काने वाले व्यक्ति को तीन माह तक का कारावास या एक हजार रुपये जुर्माना या दोनों से छिड़ित किया जा सकता है।

धारा 12(1) के अनुसार यदि विवाह में संरखक की अनुमति बल दिखाकर, धोखे से अथवा छलसे प्राप्त की गई है तो पीड़ित पक्षकार इस प्रकार के विवाह को प्रभाव शून्य घोषित करवासने के लिए याचिका प्रस्तुत कर सकता है।

4. प्रतिषिद्ध संबंधों के भीतर न हो – इस अधिनियम की धारा 5(iv) के अन्तर्गत प्रतिषिद्ध संबंध के भीतर आने वाले विवेकयों के बीच विवाह संबंध का निषेध किया गया है।

अधिनियम की धारा 3 में प्रतिषिद्ध संबंध में आने वालों की सूची निम्नलिखित प्रकार से दी गई है—
दो व्यक्ति वर्जित संबंध के अन्दर कहे जायेगे यदि

- एक दूसरे का वॉ¹ परम्परा में पूर्वज है या
- एक दूसरे के वॉ¹ परम्परा में पूर्वज या सन्तति की स्त्री या पति था या
- एक दूसरे के भाई की, या पिता या माता के भाई की या बाबा या दादी के भाई की स्त्री थी या
- दोनों भाई और बहन, चाचा और भतीजी, चाची और भतीजा है या भाई और बहन के या दो भाइयों के या दो बहनों के बच्चे हैं।

उक्त कथित संबंधों में निम्नलिखित संबंध शामिल हैं –

- सहोदर, सौतेले या अन्य सगा संबंधी
- अवैध और सक्त संबंधी
- रक्त या उत्तक संबंधी

अपवाद – प्रतिषिद्ध संबंध या नियम वहाँ लागू नहीं होता जहाँ विवाह के प्रत्येक पक्ष जिस प्रथा या चलन से शासित हो उसके अन्तर्गत उन दोनों का विवाह हो सकता हो।

शर्त के उल्लंघन के लिए दण्ड – इस अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत इस शर्त के उल्लंघन में इस अधिनियम के लागू होने के बाद सम्पन्न विवाह अकृत और शमन्य होगे और न्यायालय को डिकी द्वारा तदनुसार अकृत घोषित किये जायेंगे।

आगे धारा 18(b) के अन्तर्गत इस शर्त के उल्लंघनकर्ता को एक माह तक की साधारण केद या एक हजार रुपये तक जुर्माने की सजा या दोनों सजाएँ दी जा सकती है।

धारा 3(j) के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि काई भी व्यक्ति निम्नलिखित संबंधियों से विवाह नहीं कर सकता है—

- | | |
|----------------------------------|---------------------------|
| 1. परम्परागत अग्र स्त्री | 9. भाई की पुत्री |
| 2. परम्परागत उत्तरापेक्षी स्त्री | 10. बहिन की लड़की |
| 3. भाई की स्त्री | 11. पिता की बहिन |
| 4. पिता के भाई की स्त्री | 12. माता की बहिन |
| 5. माता के भाई की स्त्री | 13. पिता के बहिन की लड़की |
| 6. पितामह के भाई की पुत्री | 14. पिता के भाई की लड़की |
| 7. पितामही माँ के भाई की स्त्री | 15. माता के भाई की लड़की |
| 8. बहिन | |

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

इसी प्रकार कोई भी लड़की निम्नलिखित संबंधियों से विवाह नहीं कर सकती है –

1. पिता या पितामाह
2. परम्परागत अग्र स्त्री के पति
3. दामाद अथवा पुत्र की लड़की
4. भाई
5. पिता के भाई
6. माता के भाई
7. भतीजा
8. बहिन का लड़का
9. चचेरा भाई
10. फुफेरा भाई
11. ममरा भाई
12. मौसेरा भाई

प्रतिषिद्ध संबंधियों के साथ किया गया विवाह शून्य होता है।

5. सपिण्ड संबंध के परे हो— वैध विवाह के लिए पाँचवी शर्त यह है कि विवाह के पक्षकार एक दूसरे से सपिण्ड न हो। इस अधिनियम की धारा 5(v) के अन्तर्गत यह उपबंधित किया गया है कि –

“अब तक की दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रुढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे एक दूसरे के सपिण्ड न हो। इसका अर्थ यह है कि वर और वधू को एक दूसरे से सपिण्ड नहीं होना चाहिए, किन्तु यदि दोनों किसी ऐसी रुढ़ि या प्रथा से शासित होते हैं तो ऐसा विवाह हो सकता है। इसी अधिनियम की धारा 3 में सपिण्ड को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है –

1. किसी व्यक्ति से सपिण्ड निर्देश से इसका विस्तार माता से ऊपर वाली परम्परा में तीसरी पीढ़ी तक होता है प्रत्येक अवस्था में परम्परा संबंधित व्यक्ति से ऊपर गिनी जायेगी जिसे कि पहली पीढ़ी गिना जाता है।
2. यदि दो व्यक्तियों में से सपिण्ड संबंध की सीमाओं के भीतर दूसरे का परम्परागत अग्र पुरुष है या यदि उनका ऐसा ही परम्परागत विभु-पुरुष है जो कि एक दूसरे के प्रति सपिण्ड संबंध की सीमाओं के भीतर है।

इस प्रकार सपिण्ड संबंध निम्नलिखित का भी सम्मिलित करता है –

1. सदोदर, सौतेला तथा सगा संबंधी
2. वैध तथा अवैध रक्त से संबंधित
3. दत्तक ग्रहण अथवा रक्त से संबंधित

शर्त के उल्लंघन के लिए दण्ड – इस शर्त के उल्लंघन करेन परविवाह का वह पक्षकार जो इस प्रकार के विवाह की व्यवस्था कराने के लिए उत्तरदायी होगा, उसे धारा 18(v) के अन्तर्गत एक माह तक की साधारण कैद अथवा 1000रु. का जुर्माना अथवा दोनों दण्ड दिये जा सकते हैं।

6. संरक्षक की सहमति – पहले यदि कन्या 15 साल से अधिक किन्तु 18 वर्ष से कम आयु की थी तो उसके संरक्षक की सहमति विवाह के लिए आवश्यक होती थी। इस प्रकार की आवश्यकता दो बातों पर निर्भर करती थी
 - हिन्दू विवाह के लिए स्वतन्त्र सहमति आवश्यक है, तथा
 - हिन्दू कन्या जो 15 वर्ष से अधिक किन्तु 18 वर्ष से कम आयु की है अवयस्क होती है।

इन परिस्थितियों में विवाह के लिए संरक्षक की अनुमति आवश्यक थी। परन्तु अब बाल विवाह निरोधक संघर्ष 2, 1978 द्वारा धारा 5 की उपधारा (vi) को निकाल दिया गया है अर्थात् अब विवाह में संरक्षक की सहमति प्राप्त करना आवश्यक नहीं है बाल विवाह निरोधक संघर्ष 1978 द्वारा धारा 6 को निकाल दिया गया जो संरक्षक के संबंध में थी।

वैध विवाह के संस्कार – हिन्दू विवाह अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी प्रकार के वैवाहिक संस्कारों का वर्धन नहीं किया गया है। किन्तु इस अधिनियम की धारा 7 के अन्तर्गत यह उपबंध किया गया है कि –

1. हिन्दू विवाह उसमें के पक्षकारों में से किसी के प्रथागत आचारों और संस्कारों के अनुरूप किया जायेगा
2. जहाँ कि ऐसे आचार और संस्कारों के अन्तर्गत सप्तपदी है वहाँ विवाह पूरा और बाध्यकर तब हो जाता है जबकि सातवाँ पद पूरा किया जाता है।

मन्त्रों से देवताओं को आहूत करके प्रज्ञवलित की हुई अग्नि विवाह अग्नि कहलाती है जिसके सम्मुख वर तथा कन्या को सात बार फेरे लगाने के लिए घूमना पड़ता है तभी विवाह पूर्ण माना जाता है।

हिन्दू विवाह की सम्पन्नता के लिए निम्नलिखित दो धार्मिक कृत्यों को पूरा करना आवश्यक है –

1. कन्यादान तथा
2. पाणिग्रहण तथा सप्तपदी

सप्तपति सभी वर्धों में आवश्यक होता है। सप्तपदी के अतिरिक्त अन्य किसी धार्मिक किया का किया जाना आवश्यक नहीं होता। विधवा विवाह में भी धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करना आवश्यक नहीं है। अतः विवाह संस्कार को विधिवत् सम्पादित करने के लिए उचित धार्मिक अनुष्ठान किया जाना आवश्यक है।

हिन्दू विवाह का पंजीकरण – हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 8 हिन्दू विवाह के पुजीकरण के संबंध में उपबंध करती है। इस धारा के अनुसार –

1. राज्य संस्कार हिन्दू विवाहों का सावित किया जाना सुलभ करने के प्रयोजन से ऐसे नियम बना सकेंगी जो यह उपबंधित करे कि ऐसे किसी विवाह के पक्षकार अपने विवाह से संबंध पविष्टयों को इस प्रयोजन के लिए रखे गये हिन्दू निवाह रजिस्टर में ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अध्यधीन जैसी कि निहित की जाये प्रविष्ट करा सकेंगे।
2. उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक या समीचोन है तो यह उपबंध कर सकेंगी कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट विषयों का प्रविष्ट किया गया जाना उस राज्य में या उसके किसी भाग विषेष में, चाहे सभी

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

द”आओं में जो विनिर्दिष्ट की जाएँ आव”यकहोगा और जहाँ कि ऐसा कोई निर्देश निकाला गया हो वहाँ इस निमित्त बनाये गये किसी नियम का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जुर्माने से जो कि 25 रुपये तक हो सकेगा, दण्डनीय होगा।

3. इस धारा के अधीन बनाये गये सभी नियम अपने बनाये जाने के प्रत्यक्ष रूप से अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होगा।
4. हिन्दू विवाह रजिस्टर निरीक्षण के लिए सभी युक्तियुक्त समय पर खुली रहेगा और अपने में अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होगा।
5. इस धारा में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी किसी हिन्दू विवाह की मान्यता ऐसी प्रविष्टि करने में कार्य लोप के कारण किसी अनुरीति में प्रभावित नहीं रिंगी।

संक्षेप में पंजीकरण की व्यवस्था विवाह साक्ष्य की सुलभता के पंजीकरण नहीं कराया जाए तो इससे विवाह की विधि मान्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि जब चाहे और अपने राज्य के जितने भाग में चाहे और जिस रूप में चाहें इस उपबंध को लागू करे। वे चाहे तो इसे अनिवार्य भी बना सकते हैं या ऐच्छिक रहने दे। इसके अनिवार्य होने की द”ा में पंजीकरण कराने में चूक दण्डनीय होगी। अभी किसी राज्य सरकार ने पंजीकरण के संबंध में नियम नहीं बनाये हैं।

न्यायिक पृथक्करण की डिकी के आधार – हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत न्यायिक पृथक्करण के संबंध में उपबंध किया गया है। जब कभी पति और पत्नी के मध्य आपसी संबंध कटु हो जाते हैं और उनका साथ साथ रहना असंभव हो जाता है तो ऐसी परिस्थिति में न्यायालय न्यायिक पृथक्करण की डिकी दे सकता है।

विवाह विधि अधिनियम, 1976 द्वारा स”ोधित हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 10 के अन्तर्गत विवाह का कोई भी पक्ष वह विवाह चाहे इस अधिनियम के लागू होने के पहले या बाद में सम्पन्न हुआ हो, न्यायिक पृथक्करण की डिकी के लिए जिला न्यायालय में याचिका प्रस्तुत कर सकता है, ठीक उन्हीं आधारों पर जिन पर इस अधिनियम की धारा 13(1) और (2) के अन्तर्गत तलाक व विवाह-विच्छेद की डिकी के लिए याचिका प्रस्तुत की जा सकती है।

धारा 13, उपधारा के अन्तर्गत निम्नलिखित आधारों पर न्यायालयिक पृथक्करण की डिकी दी जा सकती है—

1. लैंगिक संभोग — इस अधिनियम की धारा 10(1) के अन्तर्गत जहाँ प्रत्युत्तरदाता ने विवाह के बाद खेच्छा के किसी दूसरे व्यक्ति के साथ लैंगिक संभोग किया है तो न्यायालय इस आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिकी दे सकता है। जारकर्म के एकबार भी किये जाने का प्रमाण न्यायिक पृथक्करण के लिए प्रर्याप्त होगा।

श्रीमती स्वयंप्रभा बनाम एएस चन्द्र”खर में यह निर्देश दिया गया कि संभोग की बात प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा साबित करना आव”यक नहीं है। यदि पत्नी किसी व्यक्तिके साथ स्कूटर पर जाती हुई पायी जाय अथवा किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बात करती हुई पायी जाये तो पत्नी को जारता के अपराध होने का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

2. कूरता — विधिक अर्थ में कूरता होने के लिए जीवन को शरीर को, स्वास्थ्य को, शारीरिक अथवा मानसिक खतरा अथवा इस प्रकार का खतरा युक्तियुक्तरूपेण होना चाहिए। जब याची के साथ दूसरे पक्ष ने कूरता का व्यवहार किया है तो इस आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिकी मिल जाती है। बिना किसी आधार अथवा औचित्यपूर्ण कारण के पत्नी पर जारता का आरोप लगाना मानसिक केरता होती है। मिथ्यादोषारोपण, अप”ब्द वे”यावृति के लिए स्त्री को बाध्य करना निन्दा, व्यंग्य आदि कूरता में आते हैं।

श्रीमती सुलेखा बैरागी बनाम प्रो. कमलाकान्त बैरागी में कहा गया है कि कूरता सरल अर्थ में उपचार का अधिकारी नहीं बनाता जब तक कि शरीर अथवा मस्तिष्क को उससे यह भय नहीं गना रहता कि विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ रहना खतरे से युक्त होगा।

गोपालकृष्ण शर्मा बनाम डा. मिथिले” कुमारी में यह कहा गया कि कूरता को निर्देश दिया गया कि कूरता करने के लिए पति का आचरण उनका वैवाहिक संबंध परिस्थितिक समस्याएँ आदि सभी बातों पर ध्यान देना आव”यक है क्योंकि हिन्दू विवाह की प्रकृति संविदात्मक नहीं है।

विधिक कूरता निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है जिसके आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिकी मिल सकती है –

1. वास्तविक अथवा आवृत्ति शारीरिक चोट
 2. गाली देना और अपमानित करना
 3. अतिरिक्त रतिसंभोग व रतिजन्य रोग
 4. रतिसंभोग से अस्थीकृति अथवा संभोग में असमर्थता प्रकट
 5. उपेक्षा करना
 6. अति मद्यपान
 7. अनैतिक व्यक्ति से साहचर्य के लिए विवाह करना
 8. अनैतिकता का पिराधाराआरोप लगाना
 9. बच्चों को गम्भीर प्रताड़ना
 10. लैंगिक संभोग से संतुष्ट न करना
3. अभित्याग — इस अधिनियम की धारा 10(1) के अन्तर्गत जब वादी का दूसरे पक्ष ने दो वर्ष तक लगातार अभित्याग किया हो तो न्यायिक पृथक्करण की डिकी प्राप्त हो सकती है, यह समय याचिका दायर करने की तिथि से दो वर्ष पूर्व तक माना जायेगा। अभित्याग का साधारण अर्थ होता है बिना युक्तियुक्त कारण के एक पक्ष की इच्छा के विरुद्ध दूसरे पक्ष द्वारा त्याग करना।

अभित्याग के लिए निम्नलिखित कारणों को होना आव”यक है –

1. बिना स्वीकृति के एक पक्ष दूसरे पक्ष से अलग रह रहा हो
2. अभित्याग का स्पष्ट अभिप्राय मौजूद हो

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

3. पृथक् रहने की सिंति हो
 4. विनियमित अवधि तब अलग रहना
 4. कोढ़ न्यायिक पृथक्करण का अगला आधार कृष्ट रोग से पीड़ित होना है। यदि विवाह का एक पक्षकार उग्र कुष्ठरोग से पीड़ित है तो दूसरा पक्षकार न्यायिक पृथक्करण के लिए याचिका दायर कर सकता है। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि सह रोग एक साल की अवधि तक रहा हा। किन्तु विवाह विधि अधिनियम, 1976 द्वारा यह अवधि की शर्त समाप्त की दी गई है।
 5. रतिजन्य रोग – जब दूसरा पक्षकार याचिका दायर करेन के समय के पूर्व से ऐसे रतिजन्य रोग से पीड़ित रहा हो जो सम्पर्क से दूसरे को भी हो उसकता है न्यायिक पृथक्करण का एक आधार होगा।
 6. मानसिक विकृतता – जब प्रत्युत्तरदाता उपचार से ठीक न होने योग्य मस्तिष्क विकृतता से पीड़ित हो बथवा इस प्रकार की मानसिक अव्यवस्था से लगातार अथवा बार-बार पीड़ित रहा है और जब इस सीमा तक पीड़ित रहा है कि याची प्रत्युत्तरदाता के साथ युक्तियुक्त ढंग से नहीं रह सकता।
 - व्याख्या – मानसिक अव्यवस्था पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का अपूर्ण अथवा प्रभावित विकास मनोवैज्ञानिक विकृति या व्याधियाँ अथवा इसी प्रकार की मानसिक निर्याग्यता तथा विकृति का सम्बोधन होता है। इसके अन्तर्गत सभी मानसिक रोग सम्मिलित है।
 - मनोवैज्ञानिक विकृति का तात्पर्य लगातार होने वाली एक ऐसी मानसिक अव्यवस्था अथवा मानसिक निर्याग्यता से है जिससे प्रत्युत्तरदाता का असामान्य रूप से उग्र अथवा विकृति का संबोधन होता है। इसके अन्तर्गत सभी मानसिक रोग सम्मिलित है।
 7. धर्म परिवर्तन – यदि प्रत्युत्तरदाता धर्म परिवर्तन द्वारा हिन्दू नहीं रह गया हा तो याची इस आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिकी प्राप्त कर यकता है।
 8. संसार परित्याग – विवाह का कोई पक्षकार जब संसार का परित्याग करके संन्यास धारण कर लेता है तो दूसरा पक्षकार न्यायिक पृथक्करण की डिकी प्राप्त कर सकता है।
- उसके अतिरिक्त यदि प्रतिपक्षी सात वर्ष या उससे अधिक समय से उन लोगों के द्वारा जीवित नहीं सुना गया है, जिन्होंने स्वाभाविक रूप से ऐसा सुना होता यदि वह जीवित रहा होता।
- व्याख्या – उस उपधारा (1) में अभित्याग पद का अर्थ है बिना तर्कसंगत कारण के और बिना आवेदक की सहमति या उसकी इच्छा के विरुद्ध प्रतिपक्षी द्वारा आवेदक का अभित्याग उसमें शामिल है। प्रतिपक्षी द्वारा आवेदक की हठपूर्वक उपेक्षा और उसके व्याकरण संबंधी अन्वयों और समान पदों की व्याख्या तदनुसार की जायेगी।
9. पत्नी विवाह विच्छेद के लिए तलाक याचिका इस आधार पर भी प्रस्तुत कर सकती है कि पति ने अधिनियम के प्रारम्भ हान के पूर्व पुनः विवाह का लिया था। अथवा विवाह के पूर्व पति द्वारा विवाह की गई कोई पत्नी विवाह के समय जीवित थी। यह आधार तभी लागू होगा जबकि दूसरी याचिका प्रस्तुत करेन के समय जीपित हो।
 10. अन्य आधार – उपरोक्त आधारों के अतिरिक्त निम्नलिखित आधारों पर भी पत्नी पति के विरुद्ध न्यायिक पृथक्करण की याचिका दायर कर सकती है –
 1. कि पति विवाह सम्पन्न होने के समय बलात्कार, गुदा मैथुन या पूजु मैथुन का दोषी रहा है अथवा
 2. जहाँ कि हिन्दू दत्तक ग्रहण अथवा भरण पोषण अधिनियम 1956 की धारा 18 के अधीन पति के विरुद्ध पत्नी को भरण पोषण के लिए डिकी अथवा आदें। पास कर दिया गया है और इस प्रकार कर डिकी या आदें। पास हो जाने के पूर्व विवाह केपक्षकारों में सहवास एक वर्ष अथवा और अधिक वर्षों पे नहीं हुआ है।
 3. यदि उसका विवाह 15 वर्ष की आयु पूरा होने के पूर्व सम्पन्न हुआ और उसने 15 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद किन्तु 18 वर्ष से फहले विवाह को निराकृत का दिया हो।
- न्यायिक पृथक्करण के परिणाम – न्यायिक पृथक्करण की डिकी प्राप्त कर लेने पर निम्नलिखित परिणाम उत्पन्न होते हैं–
1. विवाह संबंध का विच्छेद नहीं होता है।
 2. पति पत्नी एक दूसरे के साथ रहने और सहवास आदि करने के लिए मुक्त हो जाते हैं।
 3. पति पत्नी एक दूसरे के साथ भोजन आदि करेन से बाध्य नहीं रह जाते हैं।
 4. यदि याची स्त्री है तो उसे पति से एक प्रकार का निर्वाह धन प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यदि वह पक्षकार पति है तो धारा 25 के अन्तर्गत पत्नी से भरण पोषण का दावा कर सकता है।
 5. पत्नी आज्ञाप्ति की तिथि से लकर पृथक्करण के जारी रहने की अवधि तक अपनी हर प्रकार की सम्पत्ति के संबंध में स्वतन्त्रता समझी जाती है।

न्यायिक पृथक्करण की डिकी पारित होने के बाद इस अधिनियम की धारा 10(2) के अनुसार, यह बंधनकारी नहीं है कि पति पत्नी एक साथ रहें किन्तु यदि वे चाहे तो एक साथ रह सकते हैं और डिकी को निरस्त किये जाने के लिए जिला न्यायालय में याचिका द्वारा आवेदन कर सकते हैं, और उस याचिका के कथनों की सत्यता से संतुष्ट होने पर न्यायालय उस डिकी को निरस्त कर सकता है यदि वह ऐसा करना न्यायोचित और तर्क संगत समझे।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार न्यायिक पृथक्करण की आज्ञाप्ति अनेक अधिकार एवं दायित्वों को जन्म देता है। इससे पति पत्नी को अलग रहने की न्यायिक अनुसति प्राप्त हो जाती है किसी पक्षकार को एक दूसरें के सहवास का अधिकार नहीं रहता हल्क। विवाह से उत्पन्न अन्य सभी अधिकार स्थगित हो जाते हैं। किन्तु न्यायिक पृथक्करण की आज्ञाप्ति विवाह का समाप्त होनी कर देती। इसके द्वारा पारस्परिक समन्वय का तथा सम्मिलन का अवसर प्राप्त हो जाता है तथा पक्षकार यदि वाहे अपने जीवनपर्यन्त पति पत्नी जसा जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

दाम्पत्य अधिकारों का पुनर्नापन – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अन्तर्गत दाम्पत्य अधिकारों में महत्वपूर्ण कर्तव्य दम्पति का परस्पर एक दूसरे को साहचर्य पदान करना है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

विवाह विधियाँ अधिनियम, 1976 द्वारा स”ोधित हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अनुसार दाम्पत्य अधिकारों के पुनर्स्थापन की रिथति उस समय उत्पन्न होती है जब पति पत्नी में से कोई एक पक्ष सहवास से बिना किसी युक्तियुक्त कारण के अलग हो गया हो। तथा न्यायालय इस बात से पूर्णरूपेण संतुष्ट हो या हो कि ऐसा विधिक आधार नहीं है जिसके अनुसार पुनर्स्थापन की आज्ञापित नामंजूर की जा सकती है।

ऐसी रिथति उत्पन्न होने पर पीड़ित पक्ष जिला न्यायालय में याचिका द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के पुनर्स्थापन के लिए आवेदन कर सकता है।

ओर, ऐसी याचिका में कथित बयानों की सत्यता से और इस बात से संतुष्ट हो जाने पर कि ऐसा कोई कानूनी कारण नहीं है कि आवेदन क्यों न मंजूर किया जाय, न्यायालय उस पीड़ित पक्ष को दाम्पत्य अधिकारों के पुनर्स्थापन की डिकी मंजूर कस कसता है।

व्याख्या – जहाँ यह प्र”न उत्पन्न हो कि क्या सहवास के अलग होने का युक्तियुक्त कारण मौजूद है, वहाँ तर्कसंगत कारण को सिद्ध करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जो सहवास से अलग हुआ हो।

इस प्रकार इस धारा के अनुसार आवेदक को डिकी प्राप्त करेन के लिए निम्न बवते साबित करना आव”यक होगा –

1. यह कि प्रतिपक्षी ने आवेदक के साथ रहना छोड़ दिया है और
2. साथ न रहने का या साथ छोड़ने का कोई तर्कसंगत कारण नहीं है और
3. न्यायालय इस बात से संमुच्छ है कि याचिका में दिये गये तथ्य सच है और आवेदक को उपचार प्रदान न किये जोन का कोई वैध आधार मौजूद नहीं है।

करनाल सिंह, अमरसिंह बनाम श्रीमती भूपिन्दर कौर के बाद मे पंजाब तथा हरियाणा हाईकोर्ट ने पति की दामपत्य जीवन के अधिकार कर पुनर्स्थापना की याचिका इस आधार पर खारित कर दी कि वह अपनी पत्नी को शारीरिक ताड़ना देता था, खौलते पानी में उसका हाथ जला दिया ओर उसके विरुद्ध चारित्र्य दोष कस गम्भीर आरोप लगाया जिससे उसे मानसिक आधात पहुँचा। न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि पत्नी ने ठीक ही किया जो ऐसे पति से मुक्ति ले ली और वह उसका घर छोड़कर उने माता-पिता के साथ सुरक्षित रहने लगी।

निम्नलिखित युक्तियुक्त कारणों के आधार पर याचिका दामपत्य अधिकारों के पुनर्स्थापन की डिकी प्राप्त कर सकता है –

1. जबकि प्रत्यूत्तरदाता ने याचिका के साथ रहना छोड़ दिया है।
2. साथ न रहने का कोई युक्तियुक्त कारण नहीं है।
3. बिना किसी पर्याप्त कारण के वैवाहिक सम्बोग को उस्वीकार कर देना
4. पति द्वारा पत्नी पर असतीत के आरोप लगाना व सम्बोग को उस्वीकार कर देना
5. एक दूसरे के विरुद्ध अप्राकृतिक अपराध का मि”यारोपण करना
6. व्यभिचारिणी व वै”या कहकर मानसिक उत्पीड़न देना
7. पत्नी के साथ उचित व्यवहार न करना व सम्मान देना

शून्य तथा प्रभावहीन विवाह – विवाह अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत शून्य विवाह के संबंध में उपबंध किया गया है। इस धारा के अनुसार –

इस अधिनियम के प्रारम्भ के प”चात् अनुष्ठित किया गया यदि कोई विवाह धारा 5 के खण्ड (i), (iv) और (v) में उल्लिखित शर्तों में से किसी एक का उल्लंघन करता है, तो वह अकृत और शून्य होगा और उसमें के किसी भी पक्षकार के द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध पै”नी की गई याचिका पर अकृतता की आज्ञापित द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा।

इसी अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (i), (iv) तथा (v) के अन्तर्गत निम्नलिखित विवाह प्रारम्भ से ही निष्प्रभावी समझे जायेंगे –

1. यदि किसी भी पक्षकार के विवाह के समय दूसरा पक्षकार जीवित है।
2. यदि पक्षकार पतिष्ठित संबंधों के अन्तर्गत आत है। किन्तु यदि प्रथा ऐसा करेन की अनुमति प्रदान करती है तो यह नियम लागू नहीं होगा।
3. यदि पक्षकार एक दूसरे के सपिण्ड है। किन्तु यदि प्रथा ऐसा करने की अनुमति प्रदान करती है तो यह नियम लागू नहीं होगा।

यह धारा तभी लागू होगी जबकि विवाह, 1976 के अधिनियम के लागू होने के बाद किया गया है। विवाह इस धारा के अन्तर्गत प्रारम्भ से ही शून्य होगा। शून्य विवाह को शून्य करार देने के लिए शमन्य घोषित करेन की डिकी की आव”यकता नहीं है। जब न्यायालय वैसी डिकी पारित करता भी है तो वह केवल इस तथ्य की घोषणा करता है कि विवाह शून्य है। विवाह न्यायालय की डिकी द्वारा शून्य नहीं होता है, वह तो वैसे ही शून्य है। हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 11 अधिनियम 1976 के अन्तर्गत विवाह शमन्य घोषित कराने की याचिका विवाह के दोनों पक्षकारों में से कोई भी एक प्रेषित कर सकता है, अन्य व्यक्ति नहीं है।

इस प्रकार शून्य विवाह एक ऐसा संबंध होता है जिसकों विधि के समक्ष उपरिथत नहीं माना जा सकता है। अतः शमन्य विवाह में यद्य पक्षकार धार्मिक अनुष्ठान पूर्ण करके विवाह सम्पन्न कर भी लेते हैं किन्तु उन्हें किसी भी विधिक संबंध या संस्थिति की प्राप्ति नहीं होती। शून्य विवाह के अन्तर्गत पक्षकारों के बीच किसी भी प्रकार के कर्तव्य, अधिकार या दायित्व का जन्म नहीं होता है।

लीला बनाम लक्ष्मी में कहा गया कि शून्य विवाह में न्यायालय की डिकी की आव”यकता नहीं होती। एक शून्य विवाह प्रारम्भ से ही शून्य होता है। ऐसे विवाह विधि की दृष्टि में विवाह होते हैं।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

शून्यकरणीय विवाह – हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 12 के अन्तर्गत शून्यकरणीय विवाह को उवंधित किया गया है। यह विवाह विधिक रूप से मान्य विवाह होता है। किन्तु शून्यकरणीय होने की डिकी पारित होने के बाद वह अवैध और अमान्य हो जाता है।

अधिनियम की धारा 12 के अनुसार – कोई भी विवाह चाहे वह अधिनियम केलागू होने के पूर्व या बाद में सम्पन्न किया गया हो, निम्नलिखित आधारों पर शून्यकरणीय समझा जायेगा –

1. विवाह विधि अधिनियम, 1976 के पूर्व यह कि विवाह के समय और उसके बाद भी कार्यवाही प्रारम्भ करेन के समय तक प्रत्युत्तरदाता नपुंसक था। परन्तु विवाह विधि अधिनियम, 1976 के अनुसार भी शून्यकरणीय विवाह के लिए नपुंसकता को आधार बनाया गया है, किन्तु उसे और भी सरल कर दिया गया है। संगोष्ठन के बाद यदि प्रत्युत्तरदाता की नपुंसकता के कारण विवाह को पूर्णता नहीं दी जा सकी है तो याची विवाह को शून्य घोषित करा सकती है।

एक नवीनतम वाद रामपायरी बनाम धरमदास के वाद में शमन्य तथा शून्यकरणीय विवाह में अंतर बताते हुए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक शून्य विवाह वह होता है जो कभी भी अस्तित्व में नहीं होता। पक्षकारों की सहमति हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 11 के उल्लंघन करके शून्य विवाह को मान्य नहीं बना सकती। लेकिन ऐसी स्थिति शून्यकरणीय विवाह के मामले में नहीं होती है। एक शून्यकरणीय विवाह उस समय तक वैध होता है जब तक कि कोई न्यायालय इसे शून्य घोषित न कर दे। शून्यकरणीय विवाह के मामले में तीसरा पक्ष विवाह की वैधता के संबंध में पक्षकारों की मृत्यु के बाद भी दीवानी वाद ला सकता है। अतः शून्यकरणीय विवाह का मामला शमन्य विवाह से अलग होता है।

2. प्रत्युत्तरदाता का अस्वस्थ मस्तिष्क का होना
3. विवाह के लिए बल प्रयोग अथवा वैवाहिक संस्कार के संबंध में अथवा प्रत्युत्तरदाता से संबंधित किसी तात्त्विक तथ्य अथवा परिस्थितियों के संबंध में कपट का प्रयोग करके याची की ममति प्राप्त करना।
4. यह कि विवाह के समय प्रत्युत्तरदाता याची के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति के संभाग से गमिणी थी।

1. नपुंसकता – हिन्दू विधि में नपुंसक पुरुष या स्त्री का विवाह पूर्णतया प्रभाव”न्य माना गया है। नपुंसक से तात्पर्य लैगिक सम्बोग की अ”मता से होता है।

2. अस्वस्थ मस्तिष्क – अधिनियम की धारा 5(ii) के अन्तर्गत अस्वस्थ वाले एवं मानसिक विकृति वाले व्यक्ति से विवाह सम्पन्न होन पर ऐसे विवाह को प्रभाव”न्य घोषित किया जा सकता है।

3. बल अथवा कपट द्वारा सम्मति – जहाँ कि बल अथवा कपट द्वारा पक्षकारों की सम्मति प्राप्त कर ली गई हो तो वहाँ भी विवाह शून्यकरणीय होता है।

धारा 12(1) (ग) मे सामान्य नियम इस प्रकार दिया गया है कि कोई विवाह डिकी द्वारा प्राप्त किया जा सकता है यदि विवाह निम्नलिखित दो अ”आओं में बल या कपट द्वारा सम्पन्न किया गया है।

- याची के ऊपर बल का प्रयोग किया गया है अथवा उसके साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया गया है।
- जहाँ धारा 5 के अन्तर्गत विवाह मे संरक्षक की स्वीकृति आव”यक है, इस प्रकार की स्वीकृति बल अथवा कपट द्वारा प्राप्त की गई है। बल विवाह निरोधक संगोष्ठन अधिनियम संख्या (2) 1978 द्वारा यह धारा बदल दी गई है।

अपवाद – किन्तु कोई भी याचिका विवाह को भेंग करेन के लिउ बल अथवा कपट द्वारा सम्मति प्राप्त करने के आधार पर मंजूर नहीं की जायेगो यदि –

- यथास्थिति बल का प्रयोग समाप्त हो जाने अथवा कपट का पता चल जाने के एक वर्ष की अवधि के बाद याचिका प्रस्तुत की गई हो।
- यथास्थिति बल प्रयोग समाप्त हो जाने अथवा कपट का पता चल जाने के प”चात् याची पति अथवा पत्नी के रूप में अपनी पूर्व सहमति के साथ रह रहा हो।

कपटपूर्वक सम्मति प्राप्त करेन का तात्पर्य सह है कि प्रत्युत्तरदाता के संबंध में गलत बाते कहकर अविवाही आव”यक बातों को गोपनीय रखकार अथवा याची को अन्य किसी प्रकार से धोखा देकर सम्मति प्राप्त की गई है।

4. गर्भवती होना – यदि प्रत्युत्तरदाता विवाह के समय किसी अन्य व्यक्ति के संसर्ग से गर्भवती रही हो तो उस आधार पर भी विवाह को प्रभावहीन घोषित कराया जा सकता है।

पत्नी के गर्भवती होने के आधार पर विवाह को अकृत व शून्य घोषित कराने के लिए धारा 12(2-ख 1,2,3) के अन्तर्गत निम्नलिखित शता को पूरा किया जाना आव”यक है –

- प्रत्यार्थी विवाह के समय गर्भवती थी।
- प्रत्यार्थी के गर्भवती होने का ज्ञान याची को नहीं था
- प्रत्यार्थी याची से भिन्न किसी व्यक्ति से गर्भवती थी।
- यदि उपर्युक्त प्रकार की पत्नी के साथ विवाह हिन्दू विवाह अधिनियम के पारित होन के पूर्व हुआ होतो याचिका अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के भीतर दायर कर दी जानी चाहिए और यदि विवाह अधिनियम के लागू होने के बाद सम्पन्न हुआ है तो विवाह की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर काग्रवाही प्रारम्भ कर दी जानी चाहिए।
- प्रत्युत्तरदाता के गर्भवती होने के तथ्य का ज्ञान याची को हो जाने के प”चात् उसकी सम्मति से वैवाहिक सम्बोग नहीं हुआ है। यदि याची ने प्रत्युत्तरदाता को क्षमा कर दिया हो और उसे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया हो तो विवाह की अकृतता का प्रार्थनापत्र स्वीकार नहीं किया जायेगा।

शून्य और शून्यकरणीय विवाह में अंतर

शून्य विवाह	शून्यकरणीय विवाह
शून्य विवाह प्रारम्भ से ही शून्य तथा प्रभावहीन होता है।	शून्यकरणीय विवाह प्रारम्भ से ही शून्य तथा प्रभावहीन नहीं होता बल्कि इसे शून्य घोषित कराया जाता है।
शून्य विवाह को विवाह नहीं माना जा सकता है।	शून्यकरणीय विवाह को हिन्दू विधि में विवाह माना जाता है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

शून्य विवाह के अन्तर्गत पक्षकार पति-पत्नी की संस्थिति प्राप्त नहीं करते हैं।	शून्यकरणीय विवाह के अन्तर्गत पक्षकार पति पत्नी की संस्थिति प्राप्त करते हैं।
शून्य विवाह के अन्तर्गत पक्षकारों के अधिकार, कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का जन्म नहीं होता और न ही सन्तान का धर्मज संतान की संज्ञा मिलती है।	शून्यकरणीय विवाह के अन्तर्गत पक्षकारों के अधिकार, कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का जन्म होता और सन्तान का धर्मज संतान भी कहा जाता है।
शून्य विवाह जब न्यायालय डिको द्वारा शून्य विवाह को शमन्य घायित करता है तो यह उस तथ्य की घोषणामात्र है कि विवाह शून्य है।	शून्यकरणीय विवाह तभी शून्य होता है जब न्यायालय वैसा डिकी पारित करता है
शून्य विवाह में पक्षकार बिना डिकी पारित हुए दूसरा विवाह कर सकते हैं।	शून्यकरणीय विवाह के पक्षकार बिना तलाक की डिकी पारित हुए दूसरा विवाह नहीं कर सकते हैं।
शून्य विवाह के अन्तर्गत पत्नी अपने पति से दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अन्तर्गत भरणपोषण कर माँग नहीं कर सकती है।	शून्यकरणीय विवाह के अन्तर्गत पत्नी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अन्तर्गत भरणपोषण कर माँग कर सकती है।
शून्य विवाह प्रारम्भः शून्य होने से वह पक्षकारों की प्रासिथिति कर नहीं बदल सकता।	शून्यकरणीय विवाह सभी उद्देश्यों के लिए वैध व बाध्यकार तब तक रहता है जब तक कि न्यायालय धारा 12 में दिये गये आधारों पर उसे अकृत व शून्य न कर दे।

अनुलोम विवाह और प्रतिलोम विवाह में अंतर

अनुलोम विवाह	प्रतिलोम विवाह
अनुलोम विवाह के अन्तर्गत वर उच्च वर्ग को होता है जबकि वधू निम्न वर्ग कह होती है। जैसे वर ब्राह्मण वर्ग की होती है। जैसे वर ब्राह्मण वर्ग का तथा वधू क्षत्रिय वर्ग की हो तो ऐसा विवाह अनुलोम विवाह होता है।	प्रतिलोम विवाह के अन्तर्गत वधू उच्च जाति की तथा वर निम्न वर्ग का होता है। जैसे वर शूद्र वर्ग का तथा वधू क्षत्रिय वर्ग की होने पी ऐसा विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता है।
अनुलोम विवाह को निषिद्ध नहीं माना जाता था	प्रतिलोम विवाह को निषिद्ध माना जाता था
वर्तमान में अनुलोम विवाह को वैध माना जाता है क्योंकि धर्मास्खें में इसका कोई निषेध नहीं है।	प्रतिलोम विवाह निषिद्ध नहीं माना गया है और ऐसे विवाह को वैध करार दिया गया है।

तलाक या विवाह विच्छेद के आधार – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अन्तर्गत उन आधारों का उपबंध किया यगा है जिन पर कि न्यायालय पति या पत्नी को तलाक की डिकी जारी कर सकता है।

पूर्व हिन्दू विधि में तलाक की कोई व्यवस्था नहीं की गई थीं पारम्पर में विवाह को एक पवित्र और अटूट समबंध माना जाता था। प्रथाओं के अनुयार नारद ने निमनलिखित परिस्थितियों के अन्तर्गत एक स्त्री को यह अधिकार दिया था कि वह दूसरे पति का वरण कर सकती थी –

1. पति का पता न चलने पर
2. पति की मृत्यु हो जाने पर
3. पति के सायांसी हो जाने पर
4. पति के दु"चरित्र होन पर
5. पति के नपुंसक होने पर
6. पति को जाति से च्युत कर दिये जाने पर
7. पत्नी के जीवन के लिए घातक होन पर

इस प्रकार उपरोक्त विवाह विच्छेद के आधारों को केवल अमान्य विवाहों में ही स्वीकार किया गया था। मान्य विवाहों में विवाह विच्छेद को स्वीकार नहीं किया गया था।

वर्तमान में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अन्तर्गत एक पति या पत्नी को तलाक की सुविधा प्रदान की गई है। इस धारा के अन्तर्गत निम्नलिखित आधारों पर न्यायालय विवाह विच्छेद की डिकी पारित कर सकता है। –

1. **जारता – अधिनियम की सौ"गोधन धारा 13(1) (i) के अनुसार –**

यदि दूसरे पक्षकार नक विवाह अनुष्ठित होने के प"चात् अपनी पत्नी या पति से भिन्न किसी दूसरे व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है तो विवाह विच्छेद की याचिका दायर की जा सकती है।"

यदि विवाह के किसी पक्षकार ने किसी अन्य व्यक्ति के साथ सहमति से लगिक समीोग किया है तो विवाह का दूसरा पक्षकार तलाक की अज्ञप्ति प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार उपर्युक्त सौ"गोधन में जारता को तलाक का एक सरल आधार बना दिया गया है। अब जारता का कृत्य एक बार होना विवाह –विच्छेद की आज्ञप्ति के लिए पर्याप्त है।

पी. बनाम पी. तथा आर के मामले में घटना के आधार पर जारतापूर्ण संबंधों का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। पत्नी द्वारा अन्य व्यक्ति के साथ अर्द्ध नग्नावस्था में बैठे देचोन से जारता साबित नहीं हो सकती।

2. **कूरता – दूसरे पक्षकार द्वारा विवाह के अनुष्ठान के प"चात् याची के साथ कूरता का व्यवहार करने पर अधिनियम की धारा 13(1) के अन्तर्गत तलाक की डिकी दी जा सकती है। कूरता के अन्तर्गत मानसिक और शारीरिक कूरता शामिल है।**

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

श्रीमती कामिनी गुप्ता मुकेंद्रा कुमार गुप्ता में यह अभिनिर्धरित हुआ कि कूरता के आधार पर तलाक करेन के लिए यदि पत्नी पति पर ह आराप लगाती है कि वह शराबी था तथा वह लड़कियों को धर लाता था तथा पत्नी द्वारा पर्याप्त साक्ष्य दिये गये हो तो यह वैध आधार होगा आर तलाक की डिकी दी जा सकेगी।

कूरता के अपराध में प्रार्थी को चोट पहुँचाने का इरादा आवृत्ति नहीं है।

निम्नलिखित कूरता के आधार पर तलाक की डिकी प्राप्त हो सकती है।

1. मैथून से इन्कार
2. अतयाधिक मैथून करना
3. व्यभिचारिता का झूठा लांछन
4. पति द्वारा दूसरी स्त्री से विवाह करने का वादार करना
5. पति द्वारा किसी अन्य स्त्री के साथ विपरीत यौन संबंधी कार्य पतनी के प्रति कूरता है।
6. पति का शराबी होना
7. गाली गलौच और गन्दे 'टटों का प्रयोग करना
8. अंकत पुरुष द्वारा पतनी को उत्तेन्त करना

कूरता का आचरण अतना गम्भीर तथा भारी होना चाहिए कि सहवास को वस्तुतः असहनीय बना दे। यह वैवाहिक जीवन के सामान्य कटुता की छुटपुट घटनाओं से अधिक होना चाहिए। समूचा आचरण तथा पक्षकारों के जीवन की पृष्ठभूमि को देखना आवृत्ति है, जब कभी हम कूरता का परीक्षण करते हैं।

3. धर्म परिवर्तन – यदि प्रत्युत्तरदाता धर्म परिवर्तन द्वारा हिन्दू नहीं रह गया है तो याची इस आधार पर तलाक की डिकी प्राप्त कर सकता है। मदनमोहन बेहल बनाम श्रीमती बीना रानी के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारित किया कि जब कोई व्यक्ति हिन्दू न रहकर दूसरा धर्म स्वीकार कर लेता है तभी धर्मपरिवर्तन के आधार पर विवाह का दूसरा पक्षकार तलाक की डिकी प्राप्त सकता है हिन्दू धर्म छोड़कर सिक्ख, बौद्ध या जैन हो जाना धर्म परिवर्तन कहलाता है।

4. मरितशक विकृतता – जब विवाह का दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृतिवाला रहा है या लगातार या आवृत्ति रूप से इस किस्म के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि याची से युक्तियुक्त रूप से यह आवृत्ति नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्युत्तरदाता के साथ रहे तब याची विवाह विच्छेद की डिकी प्राप्त कर सकता है।

व्याख्या – इस खण्ड में मानसिक विकार का तात्पर्य मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का अपूर्ण तथा आधित विकास, मनोवैज्ञानिक विकार अथवा अन्य मानसिक विकार अज्ञावा अंकता से है जिसमें विख्यात मानसिकता भी सम्मिलित है।

मनोवैज्ञानिक विकार अभिव्यक्ति से मस्तिष्क का दीर्घसीधी विकार या अंकता अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप अन्य पक्षकार का आचरण असामान्य रूप से आकमक या गम्भीर रूप ये अनुत्तरदायी हो जाता है और यह उसके लिए चिकित्सा उपचार अपेक्षित हो या नहीं या किया जा सकता हो या नहीं।

जहाँ पत्नी ने विवाह विच्छेद की याचिका इस आधार पर प्रस्तुत की कि उसका पति मस्तिष्क विकृतता से पीड़ित है और पति ने न्यायालय के आदें के बावजूद भी मेडीकल जाँच नहीं कराई वहाँ न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसी स्थिति में पति का मानसिक विकृतता का निष्कर्ष निकाला जायेगा और पत्नी को विवाह-विच्छेद की डिकी प्रदान कर दी गई।

5. **कोढ़** – विवाह विच्छेद का एक आधार प्रत्युत्तरदाता का असाध्य घोर कुष्ठ रोग से ग्रसित होना भी है। विवाह के एक पक्षकार के उग्र और असाध्य कुष्ठ रोग से पीड़ित रहने पर दूसरे पक्षकार का विवाह विच्छेद की डिकी प्राप्त करने का अधिकार हो जाता है।

स्वराज्य लक्ष्मी बनाम ग.जी. पदमाराव के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि "लेप्रोमेटिस कोढ़ घातक एवं संकामक होता है। यह कोढ़ विकित्सा से अच्छा नहीं हो सकता तो विवाह के दूसरे पक्षकार को तलाक का हक प्रदान करता है।"

6. **रतिजन्य रोग** – विवाह का कोई पक्षकार दूसरे पक्षकार के संकामक रतिजन्य रोग से पीड़ित होन के आधार पर तलाक की डिकी प्राप्त कर सकता है।

शब्द रतिजन्य रोग से तात्पर्य उस रोग से है जो युगलमं से किसी एक को हो जाने पर मैथून द्वारा दूसरे को भी हो जाय, जैसे गर्भ सजाक आदि

7. **संसार परित्याग** – जब विवाह को कोई पक्षकार संसार का परित्याग करके संन्यास धारण का लेता है तो दूसरा पक्षकार इस आधार पर तलाक की डिकी प्राप्त का सकता है। किसी व्यक्ति द्वारा संन्यास ग्रहण करना उसकी सिविल मृत्यु मानी जाती है। ऐसी स्थिति में दूसरे पक्षकार को विवाह के बंधन से मुक्त होने का अधिकार होना चाहिए।

"कोई व्यक्ति स्वयं को संन्यासी घोषित करने मात्र से या सन्नायियों द्वारा पहने जाने वाले वस्त्रों को पहनने से सन्यासी नहीं हो जाता है। आवृत्ति कर्मकाण्ड करके ही वह चौथे आश्रम में 'प्रवें' करे। बिना कर्मकाण्ड के संसार का परित्याग पूर्ण नहीं होगा।"

8. **प्रकल्पित मृत्यु** – यदि विवाह के किसी पक्षकार के बारे में सात वर्ष या इससे अधिक की कालावधि में उन लोगों के द्वारा इसका जीवित होना नहीं सुना गया है जो उनके संबंधी हैं और जिन्हें यदि वह व्यक्ति जीवित होता तो उसके जीवित होने का ज्ञान प्राप्त होता हो विवाह के दूसरे पद्धाकार के लिए विवाह विच्छेद की डिकी प्राप्त करने का आधार प्राप्त हो जाता है।

9. **न्यायिक पृथक्करण** – यदि न्यायिक पृथक्करण की डिकी प्राप्त किये जाने के पूर्व एक वर्ष या उससे अधिक की कालावधि में सहवास का पुनरारम्भ नहीं होता तो यह विवाह विच्छेद प्राप्त करने का आधार हो जाता है। दूसरे शब्दों में यदि विवाह के दूसरे पक्षकार ने जब कम से कम एक वर्ष या इससे अधिकर समय तक न्यायिक पृथक्करण की डिकी के बाद उस व्यक्ति के साथ सहवास का पुनरारम्भ किया हो जिसके विरुद्ध डिकी प्राप्त की गई है तो उस अवस्था में तलाक की याचिका प्रस्तुत की जा सकती है।"

10. **दाम्पत्य अधिकार के पुनर्स्थापन की डिकी की अवहेलना** – दाम्पत्य अधिकारों के पुनर्स्थापन कही डिकी का अनुपालन न किये जाने से विवाह विच्छेद की डिकी मिल सकती है। जब विवाह का दूसरा पक्ष दाम्पत्य अधिकार की पुनः स्थापना की डिकी पूर्ति करने में डिकी प्राप्त होने के पूर्व एक वर्ष या उससे अधिके समय तक असफल रहा हो तो उस द्वारा में भी विवाह का पक्षकार विवाह विच्छेद की डिकी प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। दाम्पत्य अधिकार के

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

- पुनर्स्थापन की डिकी प्राप्त करने के प”चात् पति यदि उसकी निष्पादन की कार्यवाही नहीं करता तो हमें इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि दाम्पत्य अधिकार के पुनर्स्थापन की डिकी कापालन नहीं किया गया और वह तलाक नहीं ले सकता।
11. **पति द्वारा बहु विवाह** – पत्नी विवाह विच्छेद के लिए तलाक की याचिका इस आधार पर प्रस्तुत कर लकी है। कि पति ने अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व पुनः विवाह का लिया था, अथवा विवाही के पूर्व पति द्वारा विवाह की गई कोई पत्नी विवाह के समय जीपिवत थी। यह विवाह विच्छेद का आधार तभी लागू होगा जबकि वह दूसरी पत्नी याचिका प्रस्तुत करने के समय जीवित हो। यह उपबंध हिन्दू विवाह अधिनियम के पूर्व के विवाहों पर ही लागू होता है क्योंकि अधिनियम के पारित हो जाने के प”चात् होई पुरुष एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकता है। जहाँ तलाक की याचिका इस आधार पर प्रस्तुत की गई कि पति ने दूसरा विवाह कर लिया है, वहाँ संयह बात कि याचिका प्रस्तुत करने के बाद पति ने दूसरा विवाह की पत्नी को तलाक दे दिया, प्रथम पत्नी के तलाक की याचिका खारिज नहीं कर सकती। इस प्रकार की याचिका आव”यक विलम्ब के कारण खारिज की जा सकती है।
 12. **पति द्वारा बलात्कार, गुदा मैथुन अथवा पशु गमन** – पति द्वारा विवाह के प”चात् किया गया बलात्संगत, गुदा मैथुन या प”गुमन पत्नी के लिए विवाह विच्छेद का एक आधार होता है। यदि पति बलात्कार, गुदा मैथुन अथवा प”गुमन के अपराध का दोषी हो तो इन आधारों पर पत्नी तलाक की डिकी प्राप्त कर सकती है। बलात्कार की परिभाया भारतीय दण्ड संहिता की धारा 375 में तथा गुदा मैथुन एवं प”गुमन को परिभाया उपर्युक्त संहिता की धारा 377 में दी गई है अपनी पत्नी की सहमति के बिना गुदा मैथुन करना तथा संभोग करना भी तलाक के वैध आधार है।
 13. **भरण पोषण का आदेश** – यह आधार 1976 के स”गोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया है। इसके अधीन यह उपबंध किया गया है जहाँ हिन्दू दत्तक ग्रहण एवं भरण पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 18 के अधीन अथवा दण्ड पकिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन दावा दायर किये जाने पर कोई डिकी अथवा आदेश। पति के भरण पोषण देने के संबंध में इस बात के होते हुए भी पारित हो गई है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिकी या आदेश के पारित किये जाने के समय से पक्षकारों में एक वष या उससे अधिक समय तक सहवास का पुनरारम्भ नहीं हुआ है, पत्नी उस स्थिति में तलाक ले सकती है।
 14. **विवाह का निराकरण** – यह आधार भी 1976 के स”गोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया है। इसके अनुसार, जहाँ पत्नी का विवाह 15 वर्ष की आयु के पूर्व हो गया हो और उसने उस आयू को पूरा करने के बाद किन्तु 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व ही विवाह को निराकृत कर दिया है वहाँ पत्नी को दस आधार पर तलाक की डिकी याचिका पाने का अधिराह हो जाता है। बथुमा इलामीह बनाम बथुमा देवमा में न्यायालय ने याची पत्नी द्वारा 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के बाद भी तलाक की याचिका दायर करने के अधिकार को कायम माना। उत्तर प्रदेश में विवाह विच्छेद के लिए अब कोई अतिरिक्त आधार नहीं है।
 15. **पारस्परिक सम्मति** – विवाह विधि अधिनियम 1976 की धारा 13(ख) के अन्तर्गत विवाह विच्छेद के लिए एक नया आधार जोड़ा गया है। इस धारा के अनुसार इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए दोनों पक्षकार मिलकर विवाह विच्छेद की डिकी द्वारा विवाह के विघटन के लिए याचिका जिला न्यायालय में वाहे ऐसा विवाह विवाह विधि अधिनियम 1976 के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित किया गया हो चाहे उसके प”चात् इस आधार पद पैंग कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सकते हैं तथा वे इस शर्त के लिए परस्पर सहमत हो गये हैं कि विवाह विघटित कर देनार चाहिए।
- उपधारा (1) में निर्दिष्ट याचिका में उपस्थापित तारीख से 6 माह के प”चात् और अठारह मास के भीतर दोनों पक्षकारों द्वारा किये गये प्रस्ताव पर यदि इसी बीच याचिका वापिस नहीं ले ली गई हो, तो न्यायालय पक्षकारों को सुनने के प”चात् और ऐसी जाँच जैसी वह ठीक समझे करने के प”चात् अपना यह समाधान कर लेने के प”चात् कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और याचिका में कहे गये कथन ठीक है यह घोषणा करने वाली डिकी पारित करेगा कि विवाह डिकी की तारीख से विघटित हो जायेगा।
- स”गोधन अधिनियम 1976 के अन्तर्गत धारा 13 (क) भी जोड़ दी गई है जिसके अनुसार यदि विवाह विच्छेद की याचिका दायर कही गई है तो धारा 13 के अधीन धर्म परिवर्तन संसार परत्याग तथा प्रकल्पित मृत्यु के आधारों को छोड़कर यदि न्यायालय याचिका के प्रकथन से संतुष्ट है तो विवाह विच्छेद के आधार पर न्यायिक पृथक्करण की डिकी प्रदान कर सकता है।

तलाक की डिकी के लिए न्यायालय में याचिका पेश करने की निर्धारित अवधि – हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 विवाह विधियाँ अधिनियम 1976 द्वारा स”गोधित की धारा 14(1) के अन्तर्गत विवाह के प”चात् कम से कम एक वष की अवधि समाप्त हो जाने के प”चात् ही विवाह विच्छेद के लिए तलाक की डिकी प्राप्त करने के लिए न्यायालय में याचिका पैंग की जा सकती है। 1976 के स”गोधन के पहले यह अवधि 3 वर्ष की थी जिसको कम करके अब 1 वर्ष कर दिए गये हैं।

निर्धारित अवधि के पहले भी ऐसी पैंग की जा सकती है – धारा 14(1) के परन्तुक के अधीन हाईकोर्ट द्वारा अनाये गये नियमों के अनुसार न्यायालय ऐसी याचिका को विवाह के बाद एक वष की निर्धारित अवधि की समाप्ति के पहले भी पैंग किये जाने की अनुमति इस आधार पर दे सकता है कि मामला आवेदक की असाधारण कठिनाई का या प्रतिवादी के हक में आसाधारण दुराचार का है किन्तु यदि याचिका सुनवाई पर न्यायालय को यह प्रतीती हो कि आवेदक ने मामले की पक्षति की छिपा कर झूठा वणन देकर याचिका पेश करने की अनुमति प्राप्त की है तो, यदि यदि न्यायालय डिकी मंजूर करता है तो वह डिकी इस शर्त के अधीन होगी कि वह विवाह के बाद एक वर्ष की अवधि समाप्त होने के प”चात् उन्हीं आधारों और कथित तथ्यों पर पुनः वर्सी ही याचिका पैंग कर सकेगा।

इसी प्रकार उपधारा (2) के अनुसार विवाह के बाद एक वर्ष की अवधि समाप्त होकरे के पहले तलाक कही डिकी के लिए याचिका पैंग करने की अनुमति के लिए दाखिल किये गये अवोदन का निपटारा करने में न्यायालय विवाह से उत्पन्न बच्चों के हित और इस प्र”न का भी ध्यान रखेगा किक्या कथित एक वर्ष की अवधि की समाप्ति के पहले पक्षकारों के बीच किसी समझौते की संभावना है।

अतः इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निम्नलिखित परिस्थितियों में न्यायालय की आज्ञा लेकर एक वर्ष की अवधि के भीतर तलाक के लिए प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है –

1. याची द्वारा असाधारण कपट भोगे जाने पर
2. प्रत्युत्तरदाता की असाधारण दुराचारिता पर

न्यायिक पृथक्करण और तलाक में अन्तर

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

न्यायिक पृथक्करण	तलाक
न्यायिक पृथक्करण के अन्तर्गत विवाह के पक्षकार अन्तिम रूप से पृथक नहीं होते हैं किन्तु वे कानूनी रूप से अलग रह सकते हैं।	तलाक के पक्षकार सदैव के लिए पृथक हो जाते हैं।
न्यायिक पृथक्करण के विवाह समाप्त नहीं होता है।	तलाक के अन्तर्गत विवाह स्थायी रूप से समाप्त हो जाता है।
न्यायिक पृथक्करण के बाद विवाह के पक्षकार सहवास नहीं कर सकते।	तलाक तलाक के बाद भी पक्षकार आपस में सहवास करने के अधिकारी नहीं रह जाते हैं।
न्यायिक पृथक्करण के बाद विवाह के पक्षकार साथ-साथ रह सकते हैं। इसके अन्तर्गत विवाह के पक्षकारों अस्थाई तौर पर अलग रहते हैं।	तलाक की आज्ञाप्ति पारित हो जाने के बाद विवाह के पक्षकार साथ साथ रहने के लिए बाध्य नहीं होते। तलाक में विवाह के पक्षकार स्थायी रूप से अलग हो जाते हैं।
न्यायिक पृथक्करण के बाद यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हो जाती हैं तो विवाह के पक्षकार पनुः साथ साथ रह कर दाम्पत्य जीवन अपना सकते हैं।	तलाक की डिकी के प"चात् यदि पुनः दाम्पत्य जीवन अपनाना चाहते हैं तो उन्हें पुनः विवाह करना होगा।
न्यायिक पृथक्करण के बाद पक्षकार यदि दाम्पत्य जीवन गजारते हैं तो कानून दखल नहीं दे सकता है।	तलाक की डिकी के बाद पुनर्विवाह किये बिना दाम्पत्य जीवन गुजारने पर कानून दखल दे सकता है।
न्यायिक पृथक्करण के बाद पति अपनी पत्नी के भरण पोयाण के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।	तलाक के प"चात् पति को पत्नी के भरण पोयाण के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।
न्यायिक पृथक्करण के प"चात् पति पत्नी का संबंध पूर्ववत् ही बना रहता है।	तलाक की आज्ञाप्ति पारित हो जाने के प"चात् पति व पत्नी का संबंध समाप्त हो जाता है।

विवाह विच्छेद प्राप्त व्यक्ति का पुनर्विवाह – विवाह विच्छेद कह डिकी प्राप्त हो जाने के प"चात् पक्षकारों कां तुरन्त ही पुनर्विवाह करने के अधिकार प्राप्त नहीं होता है। हिन्दु विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 15 के अन्तर्गत उन व्यक्तियों के पुनर्विवाह का उपबंध किया गया है जिन्हें कि न्यायालय द्वारा तलाक की डिकी प्राप्त हो चूकी है।

इस धारा के अनुसार जबकि विवाह विच्छेद की डिकी द्वारा विवाह विघटित कर दिया हो और या तो डिकी के विरुद्ध अपील करने का कोई समय अधिकार ही न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो तो अपील करने के समय कोई अपील उपस्थित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की गई हो किन्तु खारिज की दी गई हो तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुनः विवाह करना विधिपूर्ण होगा।

परन्तु उन्हीं पक्षकारों के लिए पुनः विवाह करना तब तक विधिपूर्ण न होगा जब तक कि ऐसे विवाह की तारीख तक प्रथम बार के न्यायालय में हुई डिकी से कम से कम एक वर्ष न बीत गया हो।

विवाह विधि अधिनियम, 1976 के अन्तर्गत धारा 15 के परन्तुक को अब समाप्त कर दिया गया है तथा एक वर्ष का प्रतिबंध हटा दिया गया है।

इस प्रकार विवाह विच्छेद की डिकी पारित हो जाने पर विवाह के पक्षकार निम्नलिखित शर्तों के पूरी हो जाने पर पुनर्विवाह कर सकते हैं –

1. जबकि विवाह विच्छेद हो गया है और उस विवाह विच्छेद के डिकी के विरुद्ध अपील करने का अधिकार नहीं रहा है अथवा
2. यदि विवाह विच्छेद की डिकी के विरुद्ध अपील करने का अधिकार होने पर भी अपील के लिए निर्धारित अवधि समाप्त हो गई हो अथवा
3. विवाह विच्छेद की डिकी के विरुद्ध अपील करने पर वह अपील खारिज कर दी गई हो। विवाह विधि अधिनियम 1976 के द्वारा धारा 15 के परन्तुक को समाप्त करके एक वर्ष का पुनर्विवाह के संबंध में प्रतिबंध हटा दिया गया है।

आवेदक और प्रतिपक्षी द्वारा अलग अलग उसी या विभिन्न न्यायालयों में न्यायिक पृथक्करण या विवाह विच्छेद के लिए दायर की गई याचिकाओं का निपटारा – आवेदक और प्रतिपक्षी द्वारा अलग अलग उसी या विभिन्न न्यायालयों में न्यायिक पृथक्करण या विवाह विच्छेद के लिए दायर की गई याचिकाओं का निपटारे के संबंध में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 अधिनियम 1976 के द्वारा एक नयी धारा 21 के जोड़ी गई है।

इस धारा (21-क) में यह उपबंधित किया गया है कि –

1. 'जहाँ –
 - इस अधिनियम के अधीन अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धारा 10 के अधीन विवाह विच्छेद की डिकी के लिए प्रार्थना करते हुए उपस्थापित की गई है, और
 - इसके प"चात् इस अधिनियम के अधीन दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिकी के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह विच्छेद की डिकी के लिए प्रार्थना करते हुए चाहे उसी राज्य में या किसी भिन्न राज्य में उसी जिला न्यायालय में या किसी भिन्न जिला न्यायालय में उपस्थापित की गई है वहाँ अर्जियों पर अपधारा (2) में निर्दिष्ट रीति से विचार किया जायेगा।
2. ऐसे मामले में जिनमें अपधारा (1) लागू होती है –
 - यदि अर्जियाँ एक ही जिला न्यायालय में उपस्थापित की गई हैं तो उन दोनों अर्जियों का विचारण और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जायेगी।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

- यदि अर्जियाँ भिन्न भिन्न न्यायालयों में उपस्थापित की गई हैं तो वाद में उपस्थापित अर्जी उस जिला न्यायालय को अन्तरित की जायेगी जिसमें पहली वाली अर्जी उपस्थापित की गई थी और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनका निपटारा उस न्यायालय द्वारा एक साथ किया जायेगा जिसमें पहली वाली अर्जी उपस्थापित की गई थी।
- 3. ऐसे मामले में जिस पर उपधारा (2) का खण्ड(ब) लागू होता है यथारिति न्यायालय या सरकार जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से जिसमें बाद वाली अर्जी उपस्थापित की गई है, उस जिला न्यायालय जिसमें पहली वाली अर्जी लगित है अन्तरित करने के लिए व्यवहार प्रक्रिया संहिता 1908 के अधीन सक्षम है, ऐसी बाद वाली अर्जी का अन्तरण करने के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करेगी मानों उसे उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने की शक्ति दी गई है।"

अवयस्कता एवं संरक्षकता का इतिहास — सामान्यतः अवयस्का तात्पर्य उस व्यक्ति से होता है जो वयस्क नहीं है और उसकी बुद्धि अपरिपक्व होने से वह होने से वह अपने हित, अनहित को भली प्रकार समझ नहीं पाता हो। अतः ऐसे व्यक्ति की देखभाल करने और हितों की रक्षा करने के लिए जो व्यक्ति नियुक्त होता है वह संरक्षक कहलाता है।

प्रचीन समय से ही अवयस्क व्यक्ति के हितों की रक्षा की जाती रही है। इस संबंध में मनु के अनुसार राजा को अवयस्क या अनाथ के धन की रक्षा तब तक करनी चाहिए जब तक उसका समावर्तन संस्कार न हो जाये, या उसकी आये 16 वर्ष की न हो जाये।" संरक्षकता के संबंध में हिन्दू विधि के अन्तर्गत सम्मान, राजा, पिता, माता, न्यायालय अथवा अन्य व्यक्ति को संरक्षक के रूप में नियुक्त किये जाने का उपबंध किया गया था।

सन् 1890 ई. में संरक्षक और वार्डस अधिनियम पारित करके न्यायालय को अवयस्कों का संरक्षक नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। सन् 1956 ई. के हिन्दू अवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम के पारित होने के पश्चात् सुरक्षकों की परिस्थिति में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये।

हिन्दू अवयस्कता तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956 द्वारा लाये गये परिवर्तन — इस अधिनियम द्वारा संरक्षकता के संबंध में निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन लाये गये हैं —

1. प्रत्येक अवयस्क जिसके शरीर और सम्पत्ति के लिए उसके 18 वर्ष पूरा करने के पूर्व किसी न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्त किया गया है और प्रत्येक वयस्क जिसकी सम्पत्ति की अधीक्षण उसके 18 वर्ष पूरा करने के पूर्व प्रतिपालना अधिकरण द्वारा ग्रहण का लिया गया है, उसे 21 वर्ष पूरा होने पर वयस्क समझा जायेगा।
2. अन्य मामलों में 18 वर्ष पूरा होने पर कोई व्यक्ति वयस्क माना जायेगा।
3. यदि पिता न किसी वसीयत पर संरक्षक को नियुक्त कर दिया तो उसकी मृत्यु के बाद माता दूसरी प्राकृतिक संरक्षक होगी, न कि वसीयत संरक्षक।
4. धर्म परिवर्तन द्वारा हिन्दू न रह जाने वाला व्यक्ति तथा संसार का परित्याग करने वाला व्यक्ति अब अवयस्क का प्राकृतिक संरक्षक नहीं हो सकता।
5. प्राकृतिक संरक्षक अब न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना अवयस्क की सम्पत्ति का हस्तान्तरण नहीं कर सकता।
6. माता को अब अवयस्क के शरीर और सम्पत्ति का वसीयती संरक्षक नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त हो गया है और उसके द्वारा नियुक्त किया हुआ वसीयती संरक्षक पिमता द्वारा नियुक्त वसीयती संरक्षक कासे बहिष्कृत कर देगा।
7. संतान की 5 वर्ष की आयु होने तक उसकी अभिरक्षा का अधिकार सामान्यतया माता का रहेगा।
8. इस अधिनियम के अन्तर्गत सम्पत्ति का निवर्तन अथवा हस्तान्तरण करने के अवयस्क के अधिकार पर रोक लगाई है जबकि पूर्व विधि में वह ऐसा कर सकता था।
9. प्राकृतिक संरक्षक के अधिकार सीमित कर दिये गये हैं।
10. एक अवयस्क दूसरे अवयस्क का संरक्षक नहीं हो सकता है।
11. वस्तुतः संरक्षक के अवयस्क की सम्पत्ति के निर्वन करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।
12. इस अधिनियम द्वारा नैसर्गिक, वसीयती तथा न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक तीन प्रकार के संरक्षकों को मान्यता दी गई है।

यह अधिनियम हिन्दुओं के लिए लागू होगा तथासह जम्मू और कश्मीर प्रान्त को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। यह अधिनियम भूतलक्षी प्रभाव नहीं रखता।

अवयस्क — हिन्दू अवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 4 के अन्तर्गत अवयस्क को परिभाषित किया गया है।

इस धारा के अनुसार अवयस्क का तात्पर्य उन व्यक्तियों से होगा जिन्होंने 18 वर्ष कह उम्र पूरी नहीं की है।

साधोलाल बनाम मुरलीधर 29 इलाहाबाद 672 और जगन बनाम महादेव 36 कलकत्ता 769 में यह निर्धारित किया गया है कि यदि न्यायालय द्वारा संरक्षक नियुक्त किया गया है तो अवयस्कता 21 वर्ष रहेगी भले ही संरक्षक कोई कार्य करे या न करे या प्रमाणपत्र ले ले।

अतः वे सभी जिन्होंने 18 वर्ष को आयु पूर्ण नहीं की हैं, अवयस्क कहलाते हैं।

संरक्षक — संरक्षक से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से होता है जो दूसरे व्यक्तियों को शारीरिक या सामपत्तिक सा दोनों की देखभाल करने का दायितव रखता है।

हिन्दू अवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 4 के अन्तर्गत संरक्षक को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है —

संरक्षक से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो किसी अवयस्क व्यक्ति का पोयाण करता है। या उसकी सम्पत्ति की सुरक्षा करता है सा अवयस्क और उसकी सम्पत्ति दोनों की सुरक्षा करता है। निम्नलिखित को संरक्षक माना गया है –

1. प्राकृतिक संरक्षक
2. अवयस्क के पिता या माता के इच्छा पत्र द्वारा नियत किया गया संरक्षक अथवा वसीयत संरक्षक।
3. न्यायालय द्वारा घोषित या नियुक्त संरक्षक
4. कोई अन्य व्यक्ति जिसकों किसी कोर्ट आफ वार्डस के निय के अन्तर्गत संरक्षक का कार्य करन के लिए अधिकार प्राप्त हो।

इस प्रकार इस अधिनियम की धारा 4 में मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन प्रकार के संरक्षक उपबंधित किये गये हैं।

1. प्राकृतिक संरक्षक
2. वरीयत संरक्षक और
3. न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक

प्राकृतिक संरक्षक – प्राकृतिक संरक्षक कवह संरक्षक होता है जो अवयस्क से प्राकृतिक रूप से संबंधित होने के कारण संरक्षक बन जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक संरक्षक कवह व्यक्ति है जो अवयस्क से प्राकृतिक या अन्य रूप से संबंधित होने के कारण उसके शरीर या सम्पत्ति या दोनों की देखभाल का दायित्व अपने ऊपर लेता है।" विधि के अन्तर्गत केवल निम्नलिखित को प्राकृतिक संरक्षक माना गया है –

1. **पिता** – पिता के अपने अवयस्क पुत्र संरक्षक होने का सर्वप्रथम अधिकार प्राप्त है। पिता के संरक्षक का कार्य करने में सक्षम और समर्थन रहने पर कोई न्यायालय अन्य व्यक्ति को अवयस्क का संरक्षक नहीं नियुक्त कर सकता है। कोई भी पिता केवल इस आधार पर कि उसका जाति से बहिष्कास कर दिया गया है या उसने धर्म परिवर्तन कर लिया गया है अथवा उसने पुनर्विवाह कर लिया है या वंचित नहीं किया जा सकता है।
2. **माता** – अवयस्कता की संरक्षता के लिए पिता के प"चात् माता का सीन होता है। हिन्दू अवयस्कता और संरक्षता, अधिनियम 1956 की धारा 6(क) के अनुसार सामान्यतः पाँच वर्ष तक की आयु के अवयस्क की अभिरक्षा माता ही करती है। अवैध संतानों की संरक्षता पिता की अपेक्षा माता में रहती है किन्तु यदि न्यायालय ऐसे अवयस्क पुत्रों की हित की दृष्टि से यह उचित समझता है कि वे माता की संरक्षता में न रखे जाये तो उस अ"गा में माता की संरक्षता से हटा लिये जायेंगे माता के अवयस्क संतान का संरक्षक होने के अधिकार पिता की ही भाँति है। उसका पुनर्विवाह अथवा धर्मपरिवर्तन हो जाने से ही उसे संरक्षक के अधिकार से च्युत नहीं किया जा सकता है।
3. **पति** – पति अपनी अवयस्क पत्नी के शरीर तथा सम्पत्ति का संरक्षक होता है विवाह के प"चात् पत्नी की संरक्षता चाहे वह कितनी ही आयु की क्यों न हो माता पिता के पास से हटकर पति के पास चली जाती है। पति अवयस्क होते हुए भी संरक्षता विधि के अन्तर्गत पत्नी का प्राकृतिक संरक्षक है, परन्तु उसकी संरक्षता धारा 13 के अन्तर्गत पत्नी के कल्याण के अधीनस्थ है, जहाँ अवयस्क पत्नी के पति की मृत्यु हो जाये वहाँ पति के परिवार वालों को पत्नी के पिता के परिवार के संबंधियों के समक्ष प्राथमिकता मिलती है किन्तु अवयस्क विधवा पुत्री के हितों का संरक्षक उसका पिता ही नियुक्त होता है।

अधिनियम के अन्तर्गत प्राकृतिक संरक्षक – हिन्दू अवयस्क तथा संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा के अन्तर्गत उन संरक्षकों की सूची दी गई है जिन्हें अवयस्क की सम्पत्ति तथा शरीर के संबंध में प्राकृतिक संरक्षक माना जाता है। इस धारा के अनुसार –

हिन्दू अवयस्क के प्राकृतिक संरक्षक अवयस्क के शरीर के बारे में और अविभक्त परिवार की सम्पत्ति में उसके अविभक्त हित को छोड़कर उसकी सम्पत्ति के बारे में भी निम्नलिखित है –

1. किसी लड़के या अविवाहित लड़की की द"गा में पिता और उसके प"चात् माता, परन्तु जिस अवयस्क ने पाँच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाथ में होगी।
2. अधर्मज पुत्र या अधर्मज विवाहित पुत्री की अ"गा में माता और उके बाद पिता
3. विवाहित लड़कों की अ"गा में पति परन्तु यदि वह व्यक्ति हिन्दू न रह गया हो या अन्तिम रूप से संन्यासी हो चुका हो तो वह अवयस्क के प्राकृतिक संरक्षक के रूप में कार्य करने का अधिकारी नहीं होगा। इस धारा में सौतेले माता या पिता नहीं आते।

हिन्दू अवयस्क के प्राकृतिक संरक्षक की शक्तियाँ – हिन्दू अवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम 1956 की धारा 8 के अन्तर्गत एक हिन्दू अवयस्क के शरीर व सम्पत्ति के प्रति प्राकृतिक अथवा नैसर्गिक संरक्षक की शक्तियों की विवेचना की गई है।

इस धारा के अनुसार –

1. हिन्दू अवयस्क का प्राकृतिक संरक्षक इस धारा के प्राविधानों के अधीन रहते हुए ऐसे समस्त कार्यों को कर सकता है जो उस आव"यक के लाभ के लिए अथवा उसकी सम्पदा के उगाहने, संरक्षण या कायदे के लिए आव"यक या युक्तियुक्त और उचित हो, किन्तु संरक्षक किसर भी अ"गा में अवयस्क को व्यक्तिगत संविदा के द्वारा बाध्य नहीं कर सकता।
2. प्राकृतिक संरक्षक न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना –
 - अवयस्क की अचल संपत्ति के किसी भाग को बंधक या भारित या विक्रय दान विनिमय या अन्य किसी प्रकार से हस्तान्तरित नहीं करेगा, उस तारीख से एक वर्ष से अधिक होने वाली अवधि के लिए पट्टे पर नहीं देगा।
 - ऐसी संपत्ति के किसी भाग को पाँच वर्षों से अधिक होने वाली अवधि के लिए जिस तारीख को अवयस्क, वयस्कता प्राप्त करेगा, उस तारीख से एक वर्ष से अधिक होने वाली अवधि के लिए पट्टे पर नहीं देगा।
3. प्राकृतिक संरक्षक ने उपधारा (1) या उपधारा (2) के उपबंधों के विरुद्ध संपत्ति का जो कोई हस्तान्तरण किया है, वह उस अवयस्क की या उसके दावा करने वाले किसी व्यक्ति की प्रेरणा पर शून्यकरणीय होगा।
4. कोई भी न्यायालय प्राकृतिक संरक्षक को उपधारा (2) में वर्णित कार्यों में से किसी को भी करने की अनुज्ञा नहीं देगा सिवाय उस द"गा में जबकि वह आव"स्यक हो या अवयस्क की स्पष्ट भलाई के लिए हो।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

5. संरक्षक तथा वार्डस अधिनियम 1890 की अपधारा (2) के अधीन न्यायालय को अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए आवेदन तथा उसके संबंध में सभी द”आओं में इस प्रकार लागू होगा, जैसे कि यह उस अधिनियम की धारा 29 के अधीन न्यायालय की अनुज्ञा प्राप्त करने के लिए आवेदन हो, तथा विंगट रूप में –
 - आवेदन से संबंधित कार्यवाहियाँ उस अधिनियम के अधीन उसकी धारा 4-के अर्थ के लम्भीतर काग्रवाहीयाँ समझी जायेगी।
 - न्यायालय उस प्रक्रिया का अनुपालन करेगा और उसे वे शक्तियाँ प्राप्त होगी, जो उस अधिनियम की धारा 31 की उपधाराओं (2), (3) और (4) में विनिर्दिष्ट हैं तथा
 - न्यायालय के ऐसे आदें की अपील, जो नैसर्गिक संरक्षक को इस धारा की उपधारा (2) में वर्णित कार्यों में से किसी भी कार्य को करने की अनुज्ञा देने से अन्कार करे, न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय के विनि”चयों की अपील मामूली तौर पर होती है।
6. इस धारा में न्यायालय से तात्पर्य नगर व्यवहार न्यायालय या जिला न्यायालय अथवा संरक्षक तथा वार्डस अधिनियम 1890 की धारा 4-के अधीन सशक्त न्यायालय से है जिसके क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के अन्तर्गत वह अचल सम्पत्ति है और जिसके बारे में यह आवेदन किया गया है और जहाँ अचल संपत्ति किसी ऐसे एक से अधिक न्यायालय के क्षेत्राधिकार में है, वहाँ उस न्यायालय से तात्पर्य है जिसकी सीनीय सीमाओं के क्षेत्राधिकार में उस संपत्ति का कोई प्रभग स्थित है।

अस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह धारा प्राकृतिक संरक्षक को इस बात का अधिकार प्रदान करती है। कि वह अवयस्क के हित के अवयस्क के संरक्षक के लिए अथवा अवयस्क की सम्पत्ति के संरक्षण के लिए आव”यक युक्तियुक्त और सचित कार्य करे।

7. अवयस्क के संरक्षक के रूप में ऐसे व्यक्ति को अवयस्क का पालन पोषण फैलाता, स्वास्थ्य, धार्मिक संस्कार आदि से संबंधित आव”यक कार्यों को करना पड़ता है।

आव”यकता होने पर यदि वह अवयस्क की संपत्ति का हस्तान्तरण करता है तो ऐसा हस्तान्तरण विधि मान्य होगा।

पी.टी.चाथू चेत्तियार बनाम के कुत्रमुक्तक नारन के नवीनतम वाद में न्यायालय ने यह निरूपित किया कि यदि संपत्ति पिता व अवयस्क पुत्रों के नाम है और पिता के जीवित रहते हुए माता संरक्षक है और यदि वह अवयस्क बच्चों के हिस्सों की सम्पत्ति का अन्तरण कर देती है तो ऐसा अन्तरण शून्य होगा।

अवयस्क की सम्पदा की उगाही — यदि अवयस्क की सम्पत्ति किसी तीसरे व्यक्ति के कब्जे में है तो अवयस्क का संरक्षक उस समपत्ति को वापिस लेने का अधिकार रखता है।

सुलहनामा करने का अधिकार — प्राकृतिक संरक्षक अपने अवयस्क संरक्षित की ओर से किसी मामले में राजीनामा प्रस्तुत करने का अधिकार अधिकार रखता है।

ऋण की अभिस्वीकृति का अधिकार — प्राकृतिक संरक्षक अवयस्क के किसी ऋण अथवा उसके ब्याज की समय की अवधि बढ़ाने की दृष्टि से अभिस्वीकृति कर सकता है किन्तु इस ऋण को पुनर्जीवित करने का अधिकार नहीं रखता।

पारिवारिक समझौता करने का अधिकार — बालाजी बनाम नाना में यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्राकृतिक संरक्षक अवयस्क की ओर से पारिवारिक मामले तय कर सकता है अथवा समझौता कर सकता है।

अवयस्क का घर बन्धक रखना — अधिनियम की धारा 8(2) में यह विहित है कि न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना नैसर्गिक संरक्षक अवयस्क की अचल संपत्ति को या उसके किसी भी भाग का बंधक या भार या विक्रय के द्वारा परिवर्तन या भेट या अदल बदल नहीं करेगा।

अतः प्राकृतिक अभिभावक बिना न्यायालय की पूर्व अनुमति के मकान को गिरवी नहीं रख सकता है क्योंकि यह उस अवयस्क की अचल संपत्ति को या उसके विरुद्ध मुकदमा अवयस्क द्वारा या अन्य व्यक्ति द्वारा या अवयस्क का शुभचिन्तक है चलाया जा सकता है।

अवयस्क की सम्पत्ति पट्टे पर देना — इस अधिनियम की धारा 8(2) (ब) में कहा गया है कि किसी प्राकृतिक संरक्षक द्वारा न्यायालय की पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना 5 वर्ष से अधिक के लिए या 1 वर्ष से अधिक समय के लिए उस तिथि से जब अवयस्क हो जायेगा, कोई भी सम्पत्ति पट्टे पर नहीं दी जा सकती है।

एक प्राकृतिक संरक्षक अवयस्क की अचल संपत्ति 5 वर्ष से कम समय के लिए पट्टे पर दे सकता है। लेकिन यह समय 5 वर्ष से अधिक होने पर न्यायालय की अनुमति प्राप्त करना आव”यक है। अवयस्क के मकान को 3 वर्ष के लिए पट्टे पर देना प्राकृतिक संरक्षक के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत है

अवयस्क का वसीयती संरक्षक — वसीयती संरक्षक से तात्पर्य उन संरक्षकों से होता है जो अवयस्क के प्राकृतिक संरक्षक की इच्छा से नियुक्त किये जाते हैं और अवयस्क के लिए संरक्षक के रूप में कार्य करने के अधिकार रखते हैं।

पिता अथवा माता द्वारा अपनी अवयस्क संतान के शरीर अथवा संपत्ति अथवा दोनों के लिए वसीयत में नियुक्त किये गये संरक्षक को वसीयती संरक्षक कहते हैं।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

डा.यू.पी.डी. केसरी के अनुसार वसीयती संरक्षक से तात्पर्य अन संरक्षकों से है जो अवयस्क के प्राकृतिक संरक्षक की इच्छा से नियुक्त किये जाते हैं तथा अवयस्क के संरक्षक के रूप में कार्य करने के अधिकार होते हैं। इस प्रकार के संरक्षक प्राकृतिक संरक्षकों की मृत्यु के बाद ही किया गौल होते हैं।

हिन्दू अवयस्कता और संरक्षता अधिनियम 1956 की धारा 9 के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को अवयस्क के शरीर तथा संपत्ति की सुरक्षा के लिए संरक्षक नियुक्त कर सकते हैं—

1. **पिता** — ऐसा हिन्दू पिता जो अपने अवयस्क और संतान के प्राकृतिक संरक्षक के तौर पर कार्य का हकदार हो, उनमें से किसी के लिए भी उस अवयस्क के शरीर के या अवयस्क की संपत्ति के या दोनों के बारे में वसीयत द्वारा संरक्षक की नियुक्ति कर सकता है। पिता वसीयती संरक्षक की नियुक्ति करके माता के प्राकृतिक संरक्षक होने के अधिकार को अतिकामी नहीं कर सकता है। यदि माता बिना संरक्षक नियुक्त किये मर जाती है तो ऐसी स्थिति में पिता द्वारा नियुक्त वसीयती संरक्षक मान्य होगा।
2. **माता** — वह हिन्दू माता जो अवयस्क का प्राकृतिक संरक्षक होने की अधिकारिणी है तथा किसी कारणवश अयोग्य नहीं रह गई है इच्छापत्र द्वारा अवयस्क के शरीर तथा सम्पत्ति के लिए अथवा दोनों के लिए संरक्षक नियुक्त कर सकती है। यदि अवयस्क संतान का पिता वसीयती संरक्षक नियुक्त करके मरता है और माता जीवित रहती है तो उसे संरक्षक होने तथा वसीयती संरक्षक नियुक्त करने दोनों की शक्ति होती है। यदि माता वसीयती संरक्षक को नियुक्त करके मर जाती है तो उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके द्वारा नियुक्त संरक्षक को, अवयस्क की संरक्षकता का हक होगा पिता द्वारा नियुक्त किये गये वसीयती संरक्षक को कोई अधिकार नहीं होगा। हिन्दू माता अपने अवैध पुत्रों के लिए संरक्षक नियुक्त कर सकती है।
3. **विधवा** — हिन्दू विधवा जो अपने वैध पुत्रों की प्राकृतिक संरक्षक होने की हकदार है, इच्छा पत्र द्वारा अवयस्क के शरीर अथवा सम्पत्ति अथवा दोनों के लिए संरक्षक नियुक्त कर सकती है। यदि कोई संरक्षक उसके पिता क्षमा नियुक्त कियाया है तो ऐसा संरक्षक विधवा द्वारा नियुक्त संरक्षक के सूख प्रभावहीन होगा, विधवा माता अपने अवैध अवयस्क संतान के लिए भी वसीयती संरक्षक नियुक्त कर सकती है। पति कही मृत्यु से विधवा माता को अपने अवैध पुत्रों के संरक्षक नियुक्त करने के अधिकार पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है।

वसीयती संरक्षक की योग्यताएँ — वसीयती संरक्षक की योग्यताओं के संबंध में अधिनियम में कोई भी प्राधान नहीं किया गया है। फिर भी अधिनियम में दी गई सामान्य योजनाएँ और ऐसे कार्यों के संबंध में विदि । द्वारा अपेक्षित सामान्य योजनाएँ वसीयती संरक्षक पर लागू होगी। कुछ सामान्य योग्यताएँ निम्नलिखित प्रकार से हैं—

1. वसीयती संरक्षक को हिन्दू होना चाहिए जिसने संसार का परित्याग न किया हो।
2. वसीयती संरक्षक को स्वस्थ यित्त होना चाहिए।

वसीयती संरक्षक के अधिकार — हिन्दू अवयस्कता और संरक्षता अधिनियम की धारा 9(5) के अन्तर्गत वसीयती संरक्षक को वे सब शक्तियाँ और अधिकार प्राप्त हैं तो प्राकृतिक संरक्षक को है इसके अध्याधीन रहते हए की इच्छा पत्र द्वारा वे शक्तियाँ और अधिकार सीमित नहीं किये गये हैं। इस प्रकार वसीयती संरक्षक को वे सब अधिकार प्राप्त होते हैं जो कि प्राकृतिक संरक्षक को। वसीयती संरक्षक का संरक्षक के रूप में कार्य करने का अधिकार यथास्थिति पिता अथवा माता की मृत्यु के पश्चात् होता है। वसीयती संरक्षक के अधिकार पर दो प्रेकार के प्रतिबंध लगाये गये हैं—

1. अवयस्कता और संरक्षता अधिनियम द्वारा लगाये गये प्रतिबंध
2. इच्छा पत्र द्वारा लगाये गये प्रतिबंध

इस अधिनियम द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों में मुख्य प्रतिबंध यह है कि वसीयती संरक्षक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना अवयस्क को अचल संपत्ति का अन्तरण नहीं कर सकता। वसीयती संरक्षक के अणिकार पर दूसरा प्रतिबंध इच्छा पत्र द्वारा लगाया जा सकता है।

उदाहरण — यदि वसीयती संरक्षक के अधिकार का इच्छा पत्र द्वारा यह प्रतिबंध लगाया गया है कि वह अवयस्क की समपित्त का हस्तान्तरण नहीं कर सकता है तो न्यायालय की पूर्व अनुमति द्वारा भी वह सम्पत्ति का हस्तान्तरण नहीं कर सकता।

वसीयती संरक्षक का हटाया जाना — संरक्षक तथा वार्ड्स अधिनियम, 1890 की धारा 39 के अनुसार वसीयती संरक्षक को न्यायालय द्वारा हटाया जा सकता है इस अधिनियम की धारा 39 के अन्तर्गत एक वसीयती संरक्षक को निम्नलिखित आधारों पर न्यायालय द्वारा हटाया जा सकता है—

1. अपने न्यास का दुरुपयोग करना
2. कर्तव्यों के पालन में निरन्तर असफल रहना
3. संरक्षित की उचित देखभाल में प्रमाद अथवा दुर्व्यवहार करना
4. संरक्षक का दिवालिया होना
5. न्यायालय के स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निवास न करना
6. संरक्षित के हित के विपरीत भावना रखना
7. चारित्रिक दोष के कारण किसी अपराध के लिए दण्डित होना
8. अधिनियम के किन्हीं प्रावधानों की लगातार अवमानना करना
9. कर्तव्य के पालन की अयोग्यता होना

न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक — सामान्य सिद्धांत यह है कि अवयस्क व्यक्ति के हितों की रक्षा करना राज्य का परम कर्तव्य है। राज्य के प्रतिनिधि के रूप में न्यायालयों को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी अवयस्क के शरीर व सम्पत्ति की रक्षा के लिए संरक्षक को नियुक्त करें। इस प्रकार के संरक्षक के नियुक्ति न्यायालय द्वारा संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1980 के अन्तर्गत की जा सकती है। हिन्दू अवयस्कता और संरक्षता अधिनियम, 1956 की धारा 13 तथा संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 17 के अन्तर्गत यह उपबंधित किया गया है कि —

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

‘किसी व्यक्तिको हिन्दू अवयस्क का संरक्षक नियुक्त करेन में अथवा घोषित करने में न्यायालय अवयस्क के कल्याण को सर्वोपरिता देगा। यदि न्यायालय की राय में किसी व्यक्ति की संरक्षता अवयस्क के लिए कल्याणकारी नहीं होगी तो वह इस अधिनियम या हिन्दुओं के व्यवहार्थ संरक्षक संबंधी किसी विधि के प्रावधानों के बल से ही संरक्षक बनने कर अधिकारी नहीं हो जायेगा।

मुल्ला के अनुसार, न्यायालय को संरक्षक नियुक्त करते समय अवयस्क के लिंग भेद तथा आयु को ध्यान में रखना चाहिए, इसके साथ ही न्यायालय प्रस्तावित संराक के चरित्र तथा क्षमता को ध्यान में रखेगा तथा अवयस्क के मृत माता पिता की यदि कोई इच्छा हो तो उसे भी ध्यान में रखेगा। यदि अवयस्क इतेन परिपक्व मस्तिषक का हो गया है कि बुद्धिमानी से स्वयं अधिमान्य संरक्षक को निश्चित कर सकता है तो न्यायालय उसकी अधिमान्यता पर विचार कर सकता है।

श्रीमती हरदीप कोर बनाम जोगिन्दरसिंह, 1963 के वाद में न्यायालय ने यह कहा है कि ‘यद्यपि अभिनिर्धारित अवयस्क के संरक्षक का दावा किये जाने में पिता के दावे को अधिमानता मिलेगी फिर भी यदि अवयस्क का हित इस बात में है कि उसको माता के संरक्षक में रखा जाय तो न्यायालय इस स्थिति में अवयस्क को माता की संरक्षकता में रखेगा।

इसी अधिनियम की धारा 13(2) के अन्तर्गत यह कहा गया है कि यदि न्यायालय की उस व्यक्ति के संबंध में यह राय है कि उसकी संरक्षता अवयस्क के लिए कल्याणकारी नहीं होगी तो वह व्यक्ति इस अधिनियम या हिन्दुओं से व्यवहार्थ संरक्षकता संबंधी किसी विधि के उपबंधों की बदौलत संरक्षता करने के लिए हकदार नहीं होगा। इससे स्पष्ट है कि न्यायालय किसी भी ऐसे संरक्षक को हटा सकता है जिसका संरक्षक बना रहना अवयस्क के लिए कल्याणकारी नहीं है।

अतः न्यायालय के लिए किसी भी व्यक्ति को, किसी अवयस्क का संरक्षक नियुक्त करते समय अवयस्क का कल्याण ही प्रधान विचारणीय प्रश्न होगा।

बच्चे का कल्याण किसमें होगा, इस पर विसर करते समय न्यायालय अवयस्क की आयु और लिंग को ध्यान में रखेगा। सारि ही नियुक्त किये जाने वाले संरक्षक के चरित्र और उसकी सामर्थ्य को भी ध्यान में रखेगा। अवयस्क के नजदीकी संबंधों का भी न्यायालय ध्यान रखेगा। मृतक माता पिता की इच्छाओं को तथा पूर्व नियुक्त संरक्षक या प्रस्तावित संरक्षक को ध्यान में रखेगा। यदि अवयस्क कुछ बड़ा है तथा बुद्धिमान है तो उसकी बात को ध्यान में रखेगा।

संरक्षक नियुक्त होने के लिए निम्नलिखित विधिकत न्यायालय में संरक्षता हेतु अपनार आवेदन पत्र प्रस्तुत कर सकते हैं जिस पर न्यायालय संरक्षक नियुक्त करते समय विचार कर सकता है –

1. वह व्यक्ति जो संरक्षक नियुक्त होने की इच्छा रखता हो; अथवा
2. वह व्यक्ति जो अवयस्क का संरक्षक होने का दावा करता हो; अथवा
3. अवयस्क को कोईसंबंधी या मित्र अथवा
4. संबंधित क्षेत्र का कलेक्टर

न्यायालय द्वारा संरक्षक के अधिकार और कर्तव्य – न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक के निम्नलिखित अधिकार और कर्तव्य होते हैं –

1. ऐसे संरक्षक को अवयस्क की सम्पत्ति से प्रज्ञावान व्यक्ति के समान सदव्यवहार करना चाहिए
2. ऐसे संरक्षक को अवयस्क की सम्पत्ति के संरक्षक, प्रबंध तथा सुविधा का अधिकार प्राप्त होता है।
3. ऐसा संरक्षक न्याय का उल्लंघन करने पर व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।
4. ऐसे संरक्षक न्यायालय की अनुमति के बिना वेतन या भत्ते प्राप्त नहीं कर सकते हैं।
5. संरक्षक का यह दायित्व है कि अवयस्क की संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जा न रखे।
6. न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक अपनी विश्वसनीय स्थिति के कारण कुल हिसाब– किताब के लिए उत्तरदायी है।
7. ऐसा संरक्षक न्यायालय की अनुमति के बिना अवयस्क की संपत्ति का किसी भी प्रकार से हस्तान्तरण बंधक आदि नहीं कर सकता।

वस्तुतः संरक्षक – वस्तुतः संरक्षक का अथ होता है वह संरक्षक जो स्वयं ही नियंत्रित होता है। अवयस्क का वस्तुतः संरक्षक विधिक संरक्षक नहीं होता बल्कि वह स्वयं ही अवयस्क के संरक्षक के रूप में अवयस्क की संपत्ति तथा मामलों की देखभाल करता है तथा प्राकृतिक संरक्षक के समान आचरण का पालन करता है।

वस्तुतः संरक्षक की शक्तियाँ – संरक्षता की विधि में सहिताबद्ध होने के पूर्व मान्य नियम यह था कि वस्तुतः संरक्षक निम्नलिखित दो अवस्थाओं में अवयस्क की संपत्ति का हस्तान्तरण कर सकता था –

1. वैध आवश्यकता
2. संपत्ति का लाभ

वस्तुतः संरक्षक की अन्य शक्तियाँ – संरक्षता की विधि में सहिताबद्ध होने के पूर्व मान्य नियम यह था कि वस्तुतः संरक्षकों को अपने ऋण, साधारण अनुबंध पराक्रम लिखित पर ऋण द्वारा अवयस्क की संपत्ति को दायित्व के भार से लादने का अधिकार है, बशर्ते कि –

1. ऋण अनुबंध, पराक्रम लिखित के अन्तर्गत अपने लिए लिया गया है और
2. संरक्षक के उन ऋण अनुबंध और पराक्रम लिखित के अन्तर्गत अपने को दायित्व से अपवर्जित नहीं किया गया है।

हिन्दू अवयस्कता तथा संरक्षता अधिनियम, 1956 की धारा 4(ब) के अन्तर्गत वस्तुतः संरक्षक को कोई स्थान प्राप्त नहीं है तथा धारा 11 द्वारा वस्तुतः संरक्षक को समाप्त कर दिया है। इस धारा के अनुसार इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पश्चात् कोई व्यक्ति इस आधार पर कि वह अवयस्क का

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

वास्तविक संरक्षक है उसकी संपत्ति को ध्यान अथवा उससे संव्यवहार करने का अधिकार नहीं होगा। इस धारा द्वारा अधिनियम अवयस्क की संपत्ति कर लेन देन करने या अन्तरित करने के वस्तुतः संरक्षक के प्राधिकार को सदैव के लिए समाप्त की देता है।

एक हिन्दू दवयस्क कही संपत्ति के अन्तरण के संबंध में केवल प्राकृतिक संरक्षक कों ही अधिकार है कि वह संव्यवहार करे, वस्तुतः संरक्षक को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है।

तदर्थ संरक्षक – तदर्थ संरक्ष कवह व्यक्ति होता है जो केवल कुछ निश्चित या विशेष उद्देश्य के लिए संरक्षक का रूप धारण करता है। इस पकार के संरक्षक द्वारा अवयस्क की संपत्ति का अन्य संकरण शून्य होता है। हिन्दू अवयस्कता एवं संरक्षता अधिनियम में तदर्थ को कोई स्थान प्रदान नहीं किया गया है।

भारत में पुत्रत्व का महत्व – भारतीय हिन्दू समाज में पुत्र को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कहा गया है कि पिता के ऋण का भुगतान करने के लिए ही पुत्र का उत्पन्न होना आवश्यक है।

मनुस्मृति के अनुसार – पुत्र इसलिए पुत्र कहलाता है क्योंकि उसके द्वारा पिता नरक में उत्थान होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

पत्रों के प्रकार – प्राचीन हिन्दू समाज में निम्नलिखित 14 प्रकार के पुत्रों को मान्यता दी जाती थीं—

1. औसत पुत्र – अपनी बेघ स्त्री द्वारा उत्पन्न पुत्र औसत कहलाता है। सीधे पुत्रों में ऐसा सर्वोत्तम माना जाता है जिसे किसी पति ने अपनी पत्नी के साथ सम्मोग करके उत्पन्न किया हो।
2. क्षेत्रज पुत्र – अपनी स्त्री से किसी अन्य पुरुष द्वारा उत्पन्न किया गया क्षेत्रज माना जाता है। इस प्रकार के पुत्र पति की सहमति से सकी स्त्री वे उत्पन्न किये जाते हैं।
3. गूढ़ज पुत्र – जब किसी परिवार में कोई पुत्र जन्मता है और अज्ञात रहता है कि पुत्र किस पुरुष से उत्पन्न हुआ है तो जिस पुरुष की स्त्री वे वह जन्मता है उसकर गूढ़ज कहजाता है।
4. कानीन पुत्र – अविवाहित कन्या का उसके पिता के घर उत्पन्न हुआ पुत्र कानीन कहलाता है उसके विवाह के उपरान्त वह पुत्र उसके पति का पुत्र माना जाता था।
5. पुत्री का पुत्र – ऐसे पुत्र को पुत्री का पुत्र कहा जाता था जो विवाहित कन्या से उत्पन्न होता था और उसके विवाह के समय यह तय की दिया जाता था कि जो पुत्र उत्पन्न होगा वह लड़की का माना जायेगा।
6. सहोदज पुत्र – यदि कोई पुरुष जानबूझ कर या अनजाने में किसी गर्भवती स्त्री से विवाह करता है और बाद में गर्भ के भीतर रहने वाले पुत्र का जन्म हो जाता है तो इस प्रकार का पुत्र सहोदज कहलाता है।
7. पुनर्भव पुत्र – जब किसी ऐसी स्त्री से पुत्र का जन्म होता है जिसे उसके पति ने त्याग दिया है या जो विधवा हो चुकने के बाद पुनः विवाह करती है तो ऐसी स्त्री का पुत्र उस पुरुष का पुनर्भव पुत्र कहलाता है जिससे कि ऐसी स्त्री विवाह करके पुत्र को जन्म देती है।
8. दत्तक पुत्र – जब कोई व्यक्ति अपने पुत्र को अपनी स्वेच्छा से किसी अन्य सजातीय व्यक्ति को दान की दे उस पुत्र को दत्तक पुत्र कहते हैं।
9. कीत पुत्र – किसी माता पिता द्वारा बेचा गया पुत्र जो दूसरे व्यक्ति द्वारा इस अभिप्राय से खरीद लिया जाता है कि वह उसको अपना पुत्र बनायेगा वह कीत पुत्र कहलाता है। वह पुत्र सजातीय व्यक्ति की संतान भी हो सकती है आर विजातीय की भी।
10. कृत्रिम पुत्र – किसी भी बच्चे अपना बनाया गया पुत्र कृत्रिम पुत्र कहलाता है। अनाया बच्चे को पुत्र अनाये जाने पर उन्हें कृत्रिम पुत्र कहा जाता है।
11. स्वयंदत्ता पुत्र – ऐसा अनाथ बालक जिसे बिना कारण उसके माता पिता ने त्याग दिया है ऐसे व्यक्ति का स्वयंदत्ता कहलाता है जो कि उसका पालन पोषण करता है।
12. अपविद्ध पुत्र – अपने माता पिता या दोनों के द्वारा त्यागा गया पुत्र जब किसी व्यक्ति द्वारा गोद ले लिया जाता है तो जो व्यक्ति गोद लेता है उसका वह अपविद्ध पुत्र कहलाता है।
13. पार्शव पुत्र – पार्शव पुत्र ऐसे पुत्र होते हैं जिनका जन्म ब्राह्मण स्त्री तथा शूद्र पुरुष के समागम से हुआ है।
14. निषाद पुत्र – निषाद पुत्र वह है जो ब्राह्मण पुरुष तथा शूद्र पत्नी के समागम द्वारा उत्पन्न हुए हैं।

दत्तक ग्रहण का अर्थ – दत्तक ग्रहण का शाब्दिक अर्थ होता है किसी बच्चे को पुत्र के रूप में गोद लेना।

मनु के अनुसार – दत्तक ग्रहण किसी पुत्र को पुत्र के अथाव में ग्रहण करना है।

इस प्रकार दत्तक ग्रहण वह विधिक परिकल्पना होती है जिसके अन्तर्गत किसी वयेक्त का हित साधा जा सकता है।

दत्तक ग्रहण में वह व्यक्ति जिसके कई पुत्रहोते हैं बिना किसी प्रतिफल के स्वेच्छा से अपने पुत्र को किसी ऐसे व्यक्ति को दान में देता है जो पुत्रहीन है। ऐसे दान को पूरा करने हेतु पूर्व विधि में दत्तकहोम यज्ञ की महत्ता पर बल दिया गया था इस प्राकार पुत्र को नैसर्गिक माता पिता द्वारा स्वाभाविक परिवार से निकाल कर गोद लेने वाले पिता के परिवार में रखा जाता है। ऐसा दत्तक पुत्र नये परिवार में जन्म हुआ पुत्र समझा जाता है। वह नये परिवार के समस्त अधिकार एवं कर्तव्य ग्रहण करता है और पुराने परिवार से उसके समस्त संबंध टूट जाते हैं अतः किसी पुत्र को उसके माता पिता के धर से दत्तक ग्रहण करेन वाले व्यक्ति के घर में उसके पुत्र के रूप में नियोजित करता है। जिसक अनुसार यह समझा जाता है कि दत्तक ग्रहण में ग्रहीत पुत्र का दत्तक ग्रहण करने वाले पिता के घर से उसका संबंध विच्छिन्न हो गया है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

इसी प्रकार वह पुत्र जिसे उसके माता पिता किसी ऐसे व्यक्ति को पुत्र रूप में दान कर देते हैं जो पुत्रहीन है तथा तो प्रदत्त पुत्र की ही जाति का हो तथा जल के साथ स्नेहपूर्वक दिया गया हो, तो वह दत्तक पुत्र माना जाता है।

अतः हम कह सकते हैं कि किसी पिरवार का दत्तक पुत्र दूसरे परिवार द्वारा लिया गया होता है जिसका संबंध अब पूर्व परिवार के स्थान पर नये परिवार में हो जाता है।

दत्तक ग्रहण के लिए वैध आवश्यकताएँ – हिन्दू दत्तक ग्रहण और पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 6 के अन्तर्गत उन शर्तों का उपबंध किया गया है जिनके पूरा होने पर ही दत्तक ग्रहण वैध समझा जाता है।

धारा 6 के अनुसार एक वैध दत्तक ग्रहण के लिए निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना आवश्यक है –

1. गोद लेने की क्षमता – हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण अधिनियम, 1956 की धारा 7 के अनुसार कोई भी स्वरूप चित्त वाला हिन्दू यदि अवयस्क नहीं है किसी पुत्र अथवा पुत्री को दत्तक ग्रहण में ले सकता है।

परन्तु यदि उसकी पत्नी जीवित है तो जब तक कि पत्नी ने पूर्ण तथा अंतिम रूप से संसार को त्याग न दिया हो अथवा हिन्दू न रह गई हो अथवा सक्षम क्षेत्राधिकार वाले किसी न्यायालय द्वारा विकृत चित्त वाली न घोषित कर दी गई हो तब तक वह अपनी पत्नी की सहमति के बिना ग्रहण नहीं करेगा।

स्पष्टीकरण – यदि किसी व्यक्ति की एक से अधिक पत्नियाँ दत्तक ग्रहण के समय जीवित हैं तो जब तक पूर्ववर्ती परन्तु में विनिर्दिष्ट कारणों में से किसी के लिए उनमें से किसी सम्मति अनावश्यक न हो, सब पत्नियों की सम्मति आवश्यक होगी।

इस प्रकार हम की सकते हैं कि किसी भी हिन्दू पुरुष को दत्तक ग्रहण के योग्य होने के लिए निम्नलिखित दो शर्तों को पूरा करना चाहिए –

- उसे वयस्क होना चाहिए
- उसे स्वरूप चित्त होना चाहिए

इसके अलावा यदि ऐसे गोद लेने वाले व्यक्ति की पत्नी जीवित है तो उसकी सहमति लेना आवश्यक होगी, परन्तु निम्नलिखित अशाओं में सहमति का होना आवश्यक नहीं है –

- यदि पत्नी पूर्ण अथवा अंतिम रूप से संसार से विलग हो गई है, अथवा
- यदि वह हिन्दू नहीं रह गई है अथवा
- यदि किसी सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय ने उसे विकृत चित्त घोषित कर दिया हो।

यदि किसी के पास एक से अधिक पत्नियाँ हैं तो उसे पत्नी की सम्मति लेना आवश्यक नहीं है जो उपर्युक्त शर्तों में से किसी के भी अन्तर्गत आती है।

हिन्दू स्त्री की गोद लेने की क्षमता – इस अधिनियम के अन्तर्गत स्त्रियों को भी दत्तक ग्रहण करने का अधिकार प्रदान किया गया है। अधिनियम की धारा 8 हिन्दू स्त्री की गोद लेने की क्षमता के बारे में उपबंध करती है। इस धारा के अनुसार – कोई भी हिन्दू नारी जो –

- स्वरूप चित्त
- अवयस्क नहीं है
- विवाहित नहीं ले या यदि विवाहिता है तो उसका विवाह विघटित कर दिया गया है, या जिसका पति मर चुका है या पर्मण रूप से या अंतिम रूप से संसार का त्याग कर चुका है या हिन्दू नहीं रह गया है या सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय ने उसके बादे में यह घोषित कर दिया है कि वह विकृत चित्त का है।
- वह पुत्र या पुत्री को दत्तक लेने की सामर्थ्य रखती है, तो वह दत्तक ग्रहणकर सकती है।

कृष्णचन्द्र साहू बनाम प्रदीपदास में कहा गया कि यदि पत्नी संसार त्याग करने अथवा हिन्दू न रह जाने अथवा विकृत मस्तिष्क न होने की बात नहीं कही जाती है बिना उसकी सहमति के वैध दत्तक ग्रहण नहीं हो सकता है।

2. गोद देने की क्षमता – हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण अधिनियम 1956 की धारा 9 के अन्तर्गत उन व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है जो दत्तक ग्रहण में संतान को देने के लिए सक्षम होते हैं धारा 9 के अनुसार –

- बाले की माता अथवा पिता या संरक्षक को छोड़कर कोई भी व्यक्ति बालक को दत्तक ग्रहण में देने के लिए समर्थ नहीं है।
- यदि पिता जीवित हो तो उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंधों के अधीन रहते हुए केवल उसे ही दत्तक ग्रहण में बालक देने का अधिकार होगा, किन्तु जब तक माता ने पूर्ण तथा अंतिम रूप से संसार नहीं त्याग दिया गया है या वह हिन्दू नहीं रह गई हो, ऐसा अधिका माता की सहमति के बिना प्रयोग में न लाया जायेगा।
- यदि पिता की मृत्यु हो चुकी है अथवा पूर्ण तथा अंतिम रूप से संसार त्याग चुका है अथवा उसे किसी सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा विकृत मस्तिष्क का घोषित किया जा चुका है, तो माता बालक को दत्तक ग्रहण में दे सकेगी।
- जहाँ माता और पिता दोनों की मृत्यु हो चुकी हो या वे पूर्ण और अंतिम रूप से संसार का त्याग का चुके हो या सक्षम अधिकारिता वाले किसी न्यायालय ने उनके बारे में यह घोषित कर दिया हो कि वह विकृत चित्त है या जहाँ कि अवयस्क की जनकता गात न हो तो उस बालक का संरक्षक चाहे वह इच्छा पत्र द्वारा नियुक्त संरक्षक हो अथवा न्यायालय द्वारा नियुक्त अथवा घोषित संरक्षक हो, न्यायालय की पर्वत अनुज्ञा लेकर बालक को दत्तक ग्रहण में दे सकेगा।
- न्यायालय इस प्रकार की अनुज्ञा देने के पूर्व बालक की इच्छा तथा समझदारी पर विचार करेगा। इसके अतिरिक्त न्यायालय बालक के हितों को ध्यान में रखकर आज्ञा प्रदान करेगा। न्यायालय यह भी देखेगा कि दत्तक ग्रहण में पुत्र को देने के फलस्वरूप कोई देनगी या

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

इनाम, ऐसे किसी देनगी या इनाम के सिवाय जैसा कि न्यायालय मंजूर करे, अनुज्ञा के लिए आवेदन करने वाले न तो प्राप्त किया है और न प्राप्त करने का करार हक्क है और न किसी भी व्यक्ति ने आवेदन करने वाले को किया या दिया है और न ही करने या देने के लिए करार उससे किया है।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रायोजनों के लिए –

- माता और पिता पदों के अन्तर्गत दत्तक ग्रहीता माता तका दत्तक ग्रहीतर पिता नहीं आते।
- संरक्षक से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसकी देख रेख में किसी अवयस्क का शरीर या उसका शरीर और पंति दानों और उसके अन्तर्गत आते हैं –
 - # अवयस्क के पिता या माता की वसीयत द्वारा नियुक्त संरक्षक तथा
 - # किसी न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक तथा
- न्यायालय से अभिप्राय उस नगर व्यवहार न्यायालय का जिला न्यायालय से है जिसके क्षेत्राधिकार की स्थानीय सीमाओं के अन्तर्गत दत्तक ग्रहण में लिया जाने वाला व्यक्ति साधारणतः निवास करता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि धारा 9 के अन्तर्गत तीन प्रकार के व्यक्तियों को दत्तक ग्रहण में पुत्र देने का अधिकार प्राप्त है –

- # प्राकृतिक पिता
- # प्राकृतिक माता
- # संरक्षक

धूवराज जेन अनाम श्रीमती सूरजबाई में कहा गया है कि एकम सौतेली माँ अपने सौतेले पुत्र या पुत्री को गोद नहीं दे सकती क्योंकि उसे इस बात की सामर्थ्य प्राप्त नहीं है। केवल प्राकृतिक माता पिता ही दत्तक ग्रहण में पुत्र को देने का अधिकार व सामर्थ्य रखते हैं।

जहाँ बालक के माता पिता नहीं हों वहाँ बालक का संरक्षक (चाहे इच्छा पत्र द्वारा नियुक्त किया गया हो अथवा न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया हो या घोषित किया गया हो) न्यायालय की अनुमति से बालक को दत्तक ग्रहण में दे सकता है।

3. गोद लिये जोन वाले बालक की योग्यता – अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत उस व्यक्ति के लिए आवश्यक योग्यताओं का विवरण दिया गया है जो दत्तक ग्रहण के पात्र बनाये जा सकते हैं धारा 10 के अनुसार कोई भी दत्तक के लिए जाने के योग्य न होगा, जब तक कि निम्नलिखित शर्तें पमरी न हो अर्थात् –

- # वह हिन्दू है
- # वह पहले से दत्तक हनी लिया जा चुका या ली जा चुकी है
- # उसका विवाह नहीं हुआ है तब के सिवाय जबकि पक्षकारों को लागू होने वाली कोई ऐसी रुढ़ि या प्रथा हो जो विवाहित व्यक्तियों का दत्तक लिया जाना अनुज्ञात करती हो।
- # उसने 15 वर्ष की आयु पूरी नहीं की है तब के सिवाय जबकि पक्षकारों को लागू होने वाली कोई ऐसी रुढ़ि या प्रथा हो जो ऐसे व्यक्तियों का, जिन्होंने 15 वर्ष की आयु पूरी कर ली हो, दत्तक लिया जाना अनुज्ञात करती हो।

4. अन्य शर्तों का पालन किया हो – इस अधिनियम की धारा 11 के अनुसार प्रत्येक दत्तक ग्रहण में निम्नलिखित शर्तें पमरी होनी चाहिए –

- यदि दत्तक ग्रहण किसी पुत्र का है तो दत्तक ग्रहीता पिता अथवा माता का होई हिन्दू पुत्र, पौत्र अथवा पौत्र दत्तक ग्रहण के समय जीवित नहीं होना चाहिए।
- यदि दत्तक ग्रहण किसी लड़की का है, तो गोद लेने वाले पिता या माता के हिन्दू लड़की या लड़के गोद लेने के समय जीवित नहीं होनी चाहिए।
- यदि दत्तक ग्रहण किसी बालिका का किया जा रहा है तो अत्तक ग्रहीता पिता दत्तक लिये जाने वाली बालिका से आयु में कम से कम 21 वर्षाब्दी होना चाहिए।
- यदि दत्तक ग्रहण किसी स्त्री द्वारा किया जा रहा है तथा दत्तक ग्रहण में किसी बालक को लिया जा रहा है तो दत्तक ग्रहीता माता को दत्तक किये जाने वाले बालक से कम से कम 21 वर्ष गड़ा होना चाहिए।
- एक ही बालक एक साथ दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा दत्तक नहीं लिया जा सकता।
- दत्तक लिये जाने वाले बालक संबंधित जन का या संरक्षक द्वारा या उसके अधिकार के अन्तर्गत अपने मूल परिवार से दत्तक ग्रहण वाले परिवार को हस्तांतरित करेन के आशय से वास्तविक रूप में दत्तक लिया और दिया जाना आवश्यक है।

दत्तक होम का किसी दत्तक ग्रहण की मान्यता के लिए किया जाना आवश्यक नहीं होगा।

भरण पोषण की परिभाशा – हिन्दू विधि के अन्तर्गत भरण पोषण का अर्थ होता है किसी व्यक्ति के अन्तर्गत भरण पोषण का अर्थ होता है किसी व्यक्ति के भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, और चिकित्सा की व्यवस्था करना

अतः भरण पोषण एक ऐसा अधिकार होता है जिसके अन्तर्गत भोजन, वस्त्र, निवास आदि की आवश्यकताएँ एक व्यक्ति द्वारा अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों को प्रदान की जाती है।

भरण पोषण अधिकार का स्वरूप एवं सीमा – हिन्दू विधि के अन्तर्गत भरण पोषण के संबंध में दो प्रकार के दायित्व उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार के दायित्व कुछ दशाओं में व्यक्तियों के संबंध पात्र से उत्पन्न होते हैं जबकि दूसरे प्रकार के दायित्व संपत्ति से संबंधित होने पर उत्पन्न होते हैं।

1. व्यक्तिगत दायित्व – हिन्दू विधि के अन्तर्गत परिवार में हिन्दू सदस्य का अपने संबंधियों का भरण पोषण करने का दायित्व व्यक्तिगत प्रकृति को होता है। इस प्रकार का दायित्व व्यक्तिगत संबंधों से उत्पन्न होता है।

मनु के अनुसार वृद्ध माता पिता शीलवती पत्नी तथा अवयस्क का भरण पोषण करना पत्येक दशा में आवश्यक है।

पूर्व हिन्दू विधि के अन्तर्गत एक हिन्दू निम्नलिखित प्रकार के संबंधियों का भरण पोषण करने का अधिकारी होता था—

- पत्नी – पितृ सत्ता युग के प्रारम्भ से ही पत्नी की प्रति गृह में प्रमुख स्थिति रही है। उसे अपने पति गृह की प्रबंधक माना जाता है। पति अपनी पत्नी का भरण पोषण आपसी संबंधों के कारण करता है क्योंकि पत्नी के भरण पोयाण का दायित्व पति पत्नी के विधिक संबंधों के कारण उत्पन्न होता है। पत्नी को भरण पोयाण देना पति का विधिक संबंधी के कारण उत्पन्न होता है। पत्नी को भरण पोषण देना पति का व्यक्तिगत दायित्व होता है। परन्तु इसके लिए उसे निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना चाहिए –
 - # पत्नी साध्यी हो
 - # पत्नी हिन्दू हो – पति से भरण पोषण प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पत्नी हिन्दू हो। अहिन्दू हो जाने की स्थिति में वह भरण पोषण पाने की अधिकारिणी नहीं है।
 - # पत्नी पति के साथ रहती हो – पति से भरण पोषण प्राप्त करने के लिए पत्नी का पति के साथ रहना आवश्यक है, किन्तु युक्तियुक्त कारणों के होने पर वह पति से पृथक् रहते हुए भी भरण पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी है। इस प्रकार के कुछ कारण पति का विषाक्त कृष्णरोग से ग्रस्त होना पति का कूरता का बर्ताव करना पति का घर में दूसरी पत्नी रखना अथवा पति द्वारा पत्नी का अभित्याग करनार आदि थे।
 - अवयस्क संतान – अपने अवयस्क पुत्र को भरण पोषण देना पिता का दायित्व है। उसका यह दायित्व पुत्र के वयस्क हो जाने पर समाप्त हो जाता है। किन्तु यदि पुत्र भी नियोग्यता से ग्रस्त है जिसके कारणवश वह अपना भरण पोषण प्राप्त करने में अशक्त्य है, अथवा मिताक्षरा शाखा में वह पिता का सहदासिक है अथवा पिता के पास पैतृक अविभाज्य संपदा है तो वयस्क पुत्र को भी पिता भरण पोषण देने के लिए उत्तरदायी है। जारज पुत्र भी अवयस्क होने पर पिता से भरण पोयाण का अणिकारी है।
 - अविवाहित पुत्री – पिता अपनी अविवाहित पुत्रियों के भरण पोषण करने का उत्तरदायी है। वह उनके विवाह का खर्च वहन करने के लिए भी बाध्य होता है। उच्चतम न्यायालय ने स्नह प्रभा बनाम रविन्द्र के बाद में यह अभिनिर्धारित किया कि यदि वयस्क अविवाहित पुत्रियों अपनी माता के साथ रह रही है और माता की आय पर्याप्त हो, फिर भी पिता पर यह दायित्व है कि अपनी पुत्रियों के लिए भरण पोषण की रकम दे। जारज पुत्री के संबंध में यह बात भी उल्लंघनीय है कि 18 वर्ष के उपरान्त माता पिता का भरण पोषण करने का कोई दायित्व नहीं रह जाता।
 - वृद्ध माता पिता – पुत्र अपने वृद्ध माता पिता का भरण पोयाण करने के व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है।
2. सीमित दायित्व – हिन्दू विधि के अन्तर्गत भरण पोयाण से संबंधित सीमित दायित्व संपत्ति के आधार पर उत्पन्न होता है। यह दायित्व निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है –
- प्रबंधकर्त्ता – संयुक्त हिन्दू परिवार का प्रबंधकर्त्ता परिवार के सभी पुरुष, उनकी पत्नियों और बच्चों के भरण पोषण के लिए बाध्य होता है। असके लिए यह आवश्यक है कि प्रबंधकर्त्ता ही संयुक्त परिवार की सम्पत्ति को कब्जे में रखे हुए हों।
 - उत्तराधिकारी – सीमित दायित्व वह दायित्व कहलाता है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति से उन व्यक्तियों का पोषण करता है जिसके पोयाण के लिए सम्पत्ति का अन्तिम स्वामी, जो कि मृत हो चुका है और जिससे उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है, नैतिक और वैधानिक रूप से बाध्य था।
- अतः उत्तराधिकारियों के इस दायित्व में श्वसुर का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह अपनी बहू का पालन पोषण करे तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके बच्चों का पोषण करे।
- सरकार – यदि सरकार किसी व्यक्ति की संपत्ति ने लेती है तो यह उसका दायित्व है कि वह उसका भरण पोयाण करे।

आधुनिक विधि – हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोयाण अधिनियम 1956 के अन्तर्गत वर्तमान में निम्नलिखित व्यक्ति भरण पोयाण के अधिकारी हैं –

1. पत्नी
2. विधवा पुत्रवधु
3. बच्चे तथा माता पिता –पुत्रियाँ, अवैध पुत्र, अवैध पुत्रियाँ, वृद्ध तथा कमजोर माता पिता
4. मृतक के आश्रित –
 - उसके पिता
 - उसकी माता
 - उसकी विधवा स्त्री
 - उसके पुत्र, मृत पूत्र के पुत्र, मृत पूत्र के पौत्र
 - उसकी अविवाहित लड़कियाँ, मृत पुत्र की अविवाहित लड़कियाँ, मृत पुत्र के पुत्र की अविवाहित लड़कियाँ
 - उसकी विधवा लड़कियाँ
 - उसके पुत्र की विधवा स्त्री अथवा मृत पुत्र के पुत्र की स्त्री
 - उसके अवयस्क अवैध पुत्र
 - उसकी अविवाहित अवैध पुत्रियाँ

हिन्दू पत्नी का भरण पोषण का अधिकार – हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम 1956 की धारा 18 के अन्तर्गत यह उपबंधित किया गया है कि निर्णायित परिस्थितियों में एक हिन्दू पत्नी अपने पति से भरण पोषण का अधिकार पाते हुए भी पृथक् रह सकती है।

1. धारा 18(1) के अनुसार – प्रत्येक हिन्दू पत्नी चाहे उसका विवाह इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व में अथवा बाद में हुआ हो, अपने पति से भरण पोषण प्राप्त करने की अधिकारिणी है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

पोषण का अधिकार व्यक्तिगत होने से पत्नी अपने पति के जीवनकाल के उससे अन्य किसी भी रिश्तेदार या संबंधी से पोषण के अधिकार का दावा नहीं कर सकती है। पत्नी अपने पति से भरण पोषण का उसी स्थिति में ही दावा कर सकती है जबकि वह अपने पति के साथ रह रही है तथा वैवाहिक जीवन से संबंधित सभी दायित्वों को पूरा करती है।

ओवुला कोण्डा बनाम सी. पेड़ा वैंकट लक्ष्मी के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि हिन्दू पत्नी से वह पत्नी अभिप्रेत होती है जिसका विवाह पूर्ण रूप से अनुष्टित हो गया है भले ही वह ववाह हिन्दू विवाह अधिनियम के अन्तर्गत शून्य हो।

2. अधिनियम की धारा 18(2) के अन्तर्गत कोई भी हिन्दू पत्नी भरण पोषण का अधिकार प्राप्त करते हुए भी पृथक् निवास करने की अधिकारिणी होगी –

- यदि पति पत्नी के अभित्याग का अपराधी है अर्थात् वह बिना युक्तियुक्त कारण के या बिना पतनी की राय के या उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे त्यागता है या इच्छापूर्वक उसकी अवहेलना करता है।
 - यदि पति के पत्नी के साथ इस प्रकार निर्दयता का व्यवहार किया है जिससे कि उसकी पत्नी के मरिष्टष्ट में यह युक्तियुक्त सन्देह उत्पन्न हो जाये कि उसका पति के साथ रहना हानिकारक या घातक है।
 - यदि पति घृणित या उग्र कुछ रोग से पीड़ित है।
 - यदि उसकी कोई दूसरी जीवित पत्नी है।
 - यदि वह जिस घर में उसकी पतनी रहती है, उसी में एक रखेल स्त्री रखता है या अन्यत्र कही उस रखेल के साथ प्रायः रहता है।
 - यदि वह हिन्दू धर्म त्याग कर, कोई और धर्म अपना लेता है।
 - किसी अन्य कारण से जो उसके पृथक् निवास को न्यायोचित ठहराता है।
3. कोई भी हिन्दू स्त्री यदि अपना धर्म त्याग कर दूसरा धर्म अपना लेती है या उसका सतीत्व भंग हो जाता है तो वह पृथक् निवास की स्थिति में भी भरण पोयाण का दावा नहीं कर सकती है।

गोविन्दराम अन्नीबाई के अन्तर्गत यह उपबंधित किया गया है कि धारा 18(1) के अनुसार प्रत्येक हिन्दू स्त्री तलाक, न्यायिक पृथक्करण या अकृतता की कोई याचिका बिना दायर किये हुए भरण पोषण का दावा नहीं कर सकती है।

अपवाद – सामान्य नियम सह है कि एक हिन्दू पत्नी कुछ अवस्थाओं में पति से पृथक् रहकर निवास तथा भरण पोषण का दावा कर सकती है किन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में पत्नी को पृथक् निवास तथा भरण पोषण का अधिकार नहीं मिल सकेगा –

1. जब वह धर्म परिवर्तन करके हिन्दू नहीं रह जाती
2. जब वह असहाय हो जाती है
3. जब वह बिना किसी युक्ति युक्त कारण के पृथक् निवास करती है।
4. जब पति पत्नी के आपसी समझौते के फलस्वरूप पत्नी अलग रहती है और भरण पोषण का दावा त्याग देती है।

हिन्दू विधवा का भरण पोषण –हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम की धारा 19 के अन्तर्गत एक हिन्दू विधवा के भरण पोषण संबंधी अधिकार का उपबंध किया गया है। एक विधवा को अपने पति के पृथक् संपत्ति तथा संयुक्त संपत्ति में से भरण पोषण का विधिक अधिकार प्राप्त होता है। विधवा पुत्रवधू का दावा संयुक्त परिवार कर संपत्ति तथा कर्ता के विरुद्ध प्रतिपादित किया जा सकता है।

धारा 19 के अन्तर्गत यह उपबंधित किया गया है कि –

1. कोई हिन्दू पत्नी चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व या पश्चात् विवाहित हो, अपनी पति की मत्यु के पश्चात् अपने श्वसुर से भरण पोषण प्राप्त करने की हकदार होगी।

परन्तु यह सब जब तक और उस विस्तार तब जहाँ कि वह स्वयं अर्जन से या अन्य संपत्ति से अपना भरण पोषण करने में असमर्थ हो या उस दशा में जहाँ उसके पास अपनी स्वयं की कोई भी संपत्ति नहीं है और वह निम्नलिखित में से किसी से अपना भरण पोषण अभिप्राप्त करेन में असमर्थ हो –

- अपने पति या अपने पिता सा माता की संपदा से, या
- अपने पुत्र या पुत्री से यदि कोई हो, या उसकी संपदा से

पुत्र वधू को भरण पोषण देने का दायितव श्वसुर पर तभी होता है जबकि वह अपना भरण पोषण अपने पति अथवा पिता माता की संपत्ति से नहीं कर सकती।

नयायालय को सभी सुसंगत बातों पर विचार करके ही श्वसुर को भरण पोषण के लिए उत्तरदायी ठहराना चाहिए।

2. यदि श्वसुर के अपने कब्जे में की ऐसी सहदायिकी संपत्ति से जिसमें से पुत्र वधू को कोई अंश अभिप्रगाप्त नहीं हुआ है, श्वसुर के लिए ऐसा कराना साध्य नहीं है तो उपधारा (1) के अधीन बाध्यता का प्रवर्तन नहीं कराया जा सकेगा और ऐसी बाध्यता का पुत्रवधू के पुनर्विवाह पर अंत हो जायेगा।

धारा 19(2) में उन दशाओं को बतलाया गया है जिसके अनुसार विणवा पुत्र वधू से भरण पोषण का दायितव समाप्त हो जाता है। ये दशाएँ निम्नलिखित प्रकार से हैं –

- यदि श्वसुर के पास कोई साधन पोषण के लिए नहीं है जो ऐसी सहदायिकी संपत्ति में हो जिसका हकदार उसका पति रहा हो और विधवा पुत्र वधू ने इस प्रकार की सहदायिकी संपत्ति में हिस्सा प्राप्त न किया हो।
- उसने पुनर्विवाह कर लिया हो

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

- उसने धर्म पवित्रित कर लिया हो।

विधवा के लिए भरण पोषण प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपना पुनर्विवाह न करे क्योंकि पुनर्विवाह कर लेने पर विधवा का भरण पोषण का अधिकार समाप्त हो जाता है।

वृद्ध माता पिता तथा संतान का भरण पोषण – हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत वृद्ध माता पिता एवं संतानों के भरण पोषण संबंधी प्रावधानों का उपबंध किया गया है। इस धारा के अनुसार –

- इस धारा के उपांगों के अधीन रहते हुए कमजोर हिन्दू अपने जीवन काल के दौरान धर्मज सा अधर्मज अवयस्कों और वृद्ध तथा कमजोर माता पिता का भरण पोषण करेन के लिए बाध्य है।
- जबकि कोई धर्मज अवयस्क अप्राप्य वय रहे, वह अपने पिता या माता से भरण पोषण पाने के लिए दावा कर सकता है।
- किसी व्यक्ति को अपने वृद्ध का कमजोर माता पिता का या किसी अविवाहित पुत्री का भरण पोषण करने की बाध्यता का पिस्तार वहाँ तक होगा जहाँ तक कि माता पिता या अविवाहित पुत्री यथासिति स्वयं अपने उपाज्ञानों या अन्य संपत्ति से अपना भरण पोषण करने में असम्भव हो।

स्पष्टीकरण – इस धारा के अन्तर्गत माता के अर्थ में निःसंतान सौतेली माँ भी आती है।

इस प्रकार धारा 20 के अन्तर्गत वृद्ध माता पिता धर्मज तथा अधर्मज संतान को भरण पोषण उनके अवयस्क होने तक मिलता है।

बलीराम बनाम मुखियार कौर में कहा गया कि अविवाहित वयस्क हो जाने पर भी भरण पोषण की अधिकारिणी है।

इन्द्रमल बनाम बाबूलाल में यह निरूपित किया गया कि जहाँ किसी पुत्र का दत्तक ग्रहण ही अपेक्षित होता है वहाँ उसे अंतरिम भरण पोषण दिया जाना इस अधिनियम द्वारा वर्जित नहीं है।

चन्द्रकिशोर अनाम नानकचन्द में कहा गया है कि अविवाहित पुत्री के दौरान खर्चों व विवाह के उचित प्रबंध के लिए पिता ही उत्तदायी होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वृद्ध माता पिता और अवयस्क संतानों का भरण पोषण का दायितव भी एक हिन्दू को होता है।

आश्रितों का पोषण – हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम 1956 की धारा 22 के अन्तर्गत आश्रितों के पोयाण संबंधी प्रावधानों का वधन किया गया है।

इस धारा के अनुसार –

- मृत हिन्दू के दायाद मृतक से दाय में अपने को प्राप्त संपदा से मृतक के आश्रितों का उपधारा (1) के उपबंधों के अधीन रहते हुए भरण पोषण करने के लिए बाध्य है।
- जहाँ कि किसी आश्रित ने इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् मृत हिन्दू की संपदा में कोई अंश वसीयती या निर्वसीयती उत्तराधिसकार द्वारा अभिप्राप्त नहीं किया है वहाँ इन अधिनियमों के अन्तर्गत यह है कि वह आश्रित उन व्यक्तियों से भरण पोषण प्राप्त करने का हकदार होगा जो उस संपदा का लेते हैं।
- जो व्यक्ति उस संपत्ति में दाय प्राप्त करेंगे और जिस हिस्से से प्राप्त करेंगे उसी हिस्से के अनुसार अन्हें पोषण का खर्च भी देना पड़गा।
- यदि कोई व्यक्ति स्वयं आश्रित है और जो हिस्सा उसका अधिनियम द्वारा पोषण के लिए निर्धारित है, वह पोषण के खर्च देने से कम हो जाता है तब वह व्यक्ति खर्च देने के लिए बाध्य नहीं होगा। दूसरे शब्दों में जो व्यक्ति अपने लिए किसी संपत्ति से पोषण प्राप्त करता है, वह पोषण के लिए उस संपत्ति में से देने के लिए बाध्य नहीं होगा।

श्रीमती रामजी बनाम राजा पंचम सिंह में कहा गया है – इस प्रकार दायाद चाहे जो भी हो वह भरण पोषण देने के लिए आध्य है। मृतक के दायाद इन भरण पोषण को देने के व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं है वरन् यह भरण पोषण वे मृतक की संपदा से होते हैं। इस प्रकार आश्रितों के भरण पोषण का अधिकार मृतक की संपत्ति के बिंदु ही होता है। प्रत्येक आश्रित को मृतक के उत्तराधिकार से भरण पोषण पाने का अधिकार होता है।

पूर्व हिन्दू विधि के अनुसार जिस आश्रित को मृतक पोषण देने के लिए बाध्य था, उसे उसकी संपत्ति दाय में प्राप्त करने वाले व्यक्ति उस संपत्ति से पौष्टि करने के लिए बाध्य है। यहाँ इस संबंध में नैतिक दायित्व एक विधिक दायित्व बन जाता है।

भरण पोषण की धनराशि – हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिकन्यम 1956 की धारा 23 के अन्तर्गत भरण पोषण की धनराशि के निर्धारित करने के संबंध में उपबंध किये गये हैं। इन धारा के अन्तर्गत भरण पोषण की धनराशि निश्चित करने का अधिकार न्यायालय का होता है। प्रत्येक मामले में परिसितियों के अनुसार इस संबंध में निश्चित किया जाता है। इस धारा के अनुसार –

- इस बात को अवधारित करना न्यायालय के विवेकाणिकार में होगा कि वह कोई भरण पोषण इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन दिलाया जाये और दिलाया जाय जो कितना और ऐसा करने में न्यायालय, यथास्थिति उपधारा (2) या उपधारा (3) में वर्धित बातों को जहाँ तक वे लागू हैं सम्यक् रूप ये धस्यान रखेगा।
- पर्नी बालक या वृद्ध माता पिता के पोषण की धनराशि निर्धारित करते समय न्यायालय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखेगा –
 - पक्षकारों की अवस्था तथा हैमियत
 - दावेदार की युक्तियुक्त माँग
 - यदि दावेदार अलग रह हो तो इस बात को कि दावेदार का ऐसा करना न्यायोचित है।
 - दावेदार की संपत्ति कर मूल्य तथा उस संपत्ति से आय, दोवदार की स्वयं की आय, किसी अन्य रूप से प्राप्त आय

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

- हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण अधिनियम के अन्तर्गत पोषण के अधिकारी व्यक्तियों की संख्या

मालिनी सिंघल बनाम रवि सिंघल के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने भरण पोषण की धनराशि के संबंध में एक महत्वपूर्ण निणय दिया। न्यायालय ने इस वाद में भरण पोषण के संबंध में एक नया दृष्टिकोण निरूपित किया। प्रस्तुत वाद में वादी एक सम्पन्न संयुक्त हिन्दू परिवार की सदस्यता थी, जिसमें पतनी को प्रतिमाह उसके भरण पोषण के लिए 40 हजार रुपया देने की बात तय की गयी थी। साथी ही उसकी बेटी के अध्ययन के लिए भी संपूर्ण खर्च देने की बात कही गयी थी। विवाह के कुछ समय पश्चात् वादी के पति का देहान्त हो गया था, उसकी मृत्यु के पश्चात् कुटुम्ब के अन्य सदस्यगण पे समझौते के आधार पर खर्च देना बंद कर दिया। वादी ने इस बात को न्यायालय के समक्ष रखा। न्यायालय पे प्रस्तुत वाद में समझौते को उचित ठहराते हुए कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को इस बात का निर्देश दिया की वादी के भरण पोषण की राशि 40 हजार रुपये प्रतिमाह की दर से दिया जाय तथा उसकी सभी बकाया धनराशि उसे दो माह के अंदर दे दी जाय

- इस अधिनियम के अधीन किसी आश्रित को यदि कोई भरण पोषण की रकम दी जाती है तो उस रकम के अवधारण करेन में निम्नलिखित वादों को ध्यान में रखा जायेगा –

- मृतक का ऋण चुकाने के बाद उसकी संपत्ति का मूल्य
- आश्रित के विषय में मृतक द्वारा इच्छापत्र में कही गई बात
- दोनों के संबंध की दूरी
- आश्रित की युक्तियुक्त आवश्यमता
- मृतक के आश्रित से पूर्व संबंध
- आश्रित की संपत्ति का मूल्य उसकी आय स्वयं अपार्जन किसी अन्य प्रकार से आय
- इस अधिनियम के अन्तर्गत आश्रित पोषण के हकदारों की संख्या

न्यायालय का विवेक – न्यायालय भरण पोषण की राशि के निर्धारण में अपने विवेक का प्रयोग करेगा। न्यायालयों को भरण पोषण की राशि निर्धारित करते समय पक्षकारों की स्थिति और परिस्थिति देखनी चाहिए।

इस धारा के लिए यह भी आवश्यक है कि भरण पोषणका दावा करने वाला व्यक्ति हिन्दू होना चाहिए।

इस धारा के लिए यह भी आवश्यक है कि भरण पोषण का दावा करने वाला व्यक्ति हिन्दू होना चाहिए।

सुन्दरलाला बनाम सुब्बिया पिल्लई मे कहा गया कि कोई अविवाहित पुत्री जा ईसाई धर्म में परिवर्तित हो गयी है इस धारा के अणीन भरण पोषण के अधिकार की माँग नहीं कर सकती है। यह अधिकार एक व्यक्तिगत अधिकार होता है। अतः दावाकर्ता की मृत्यु होने या धर्म परिवर्तन करेन पर यह अधिकार सामर्प्त हो जाता है।

भरण पोषण का प्रभार – हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया गया है कि कब भरण पोषण प्रभाव के रूप में होता है।

इस धारा के अनुसार 'आश्रित का पोषण का दावा मृतक की संपत्तिया उसके किसी हिस्से पर कोई प्रभार नहीं है। किन्तु यदि वह –

1. मृतक के इच्छापत्र द्वारा किया गया है या
2. न्यायालय की आश्रित द्वारा हुआ है या
3. आश्रित और सम्पत्ति के स्वामी की सहमति द्वारा हुआ है तो वह प्रभार हो जायेगा

अतः भरण पोषण अधिनियम के अन्तर्गत किसी अर्जित के भरण पोषण का दावा मृतक की संपदा अथवा उसके किसी अंश पर स्वतः भार नहीं होता है। किन्तु निम्नलिखित तरीकों से उसकी संपदा या उसके किसी भाग पर भार बनाया जा सकता है –

1. मृतक के इच्छापत्र या परसीयत द्वारा
2. न्यायालय की डिकी द्वारा
3. आश्रित और संपदा के स्वामी के बीच करार
4. अन्य प्रकार से

भरण पोषण की धनराशि में परिवर्तन – हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम 1956 की धारा 25 के अन्तर्गत भरण पोषण की धनराशि में परिवर्तन किये जाने के संबंध में निम्नलिखित प्रकार से उपबंध किया गया है।

यदि परिस्थितियों में ऐसी सारभूत तब्दीली हो जाती है जिसमें भरण पोषण की रकम में परिवर्तन करना न्यायानुमत है तो भरण पोषण की रकम चाहे वह इस निश्चय की गई है, तत्पश्चात् परिवर्तित की जा सकेगी।

सिथारथनमा बनाम सेशमा के मामले में कहा गया कि पत्नी के पोषण के लिए निर्धारित धनराशि अपर्याप्त होने पर उसे परिवर्तित करके निश्चित करेन का न्यायालय को अधिका होगा।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

न्यायालय द्वारा या सहमति से तो धनराशि इस अधिनियम के प्रारम्भ होने से पूर्व या बाद में निश्चित हुई है उसमें बाद में भी परिवर्तन किया जा सकता है। यह परिवर्तन निम्न कारणों पर हो सकता है –

1. यदि परिस्थिति में पर्याप्त अंतर आ गया है।
2. यदि आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में ऐसा अंतर आ गया है कि परिवर्तन न्यायोनित हो गया है। पोषण की रकम चाहे डिकी द्वारा निधारित हुई हो चाहे सहमति द्वारा यदि परिस्थिति में पर्याप्त अंतर आ गया है तो वह घट बढ़ सकती है। इस प्रकार संपत्ति के बढ़ने पर या आवश्यक वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाने से धनराशि बढ़ायी जा सकती है। असके विपरीत होने पर धनराशि घटायी भी जा सकती है। किन्तु यदि कोई विधवा यह सहमति देती है कि वह भविष्य में किसी प्रकार की बढ़ोत्तरी का दावा नहीं करेगी तो वह उस सहमति द्वारा बाध्य होगी।

मृत व्यक्ति के ऋण स्थिति जबकि संपत्ति पर पोषण का भार है – हिन्दू दत्तक ग्रहण और भरण पोषण अधिनियम की धारा 26 के अनुसार –

“मृतक द्वारा लिये गये अथवा देय प्रतयेक के ऋणों को आश्रितों के भरण पोषण के दावों के सक्षम अग्रता दी जायेगी।

यह धारा इस नैतिक सिद्धान्त पर आधारित है कि –

मृतक का कर्ज सबसे अधिक प्राथमिकता रखता है। यह अधिनियम द्वारा प्रदान किये गये पोषण के अधिकार पर भी प्राथमिकता रखता है। किन्तु यदि पोषण एक कर्ज के समान हो गया है जो

1. मृतक के इच्छा पत्र द्वारा
 2. न्यायालय की डिकी द्वारा
 3. आश्रित और संपत्ति के स्वामी के बीच हुई सहमति के द्वारा हुआ है तो इसको भी ऋण के साथ प्राथमिकता दी जायेगी।
- संपत्ति के हस्तांतरण से भरण पोषण के अधिकार पर प्रभाव – हिन्दू दत्तक ग्रहण तथा भरण पोषण अधिनियम की धारा 28 के अन्तर्गत भरण पोषण के अधिकार पर संपत्ति के हस्तांतरण के प्रभाव के संबंध में निम्नलिखित प्रकार से उपबंध किया गया है –

‘जहाँ कि आश्रित को संपदा में से भरण पोषण पाप्त है और ऐसी संपदा या उसका कोई भाग का हस्तांतरण किया जाता है तो यदि हस्तांतरिती को उस अधिकार की समचना है या यदि वह हस्तांतरण बना मूल्य के हैं तो भरण पोषण के अधिकार का अनुपालन हस्तांतरिती के खिलाफ कराया जा सकेगा; किन्तु ऐसे हस्तांतरिती के खिलाफ नहीं कराया जा सकेगा जो प्रतिफलार्थ हस्तांतरिती है जिसे उस अधिकार की सूचना नहीं है।

विधवा का भरण पोषण का अधिकार मृतक पिता की संपत्ति पर भार नहीं होता। संयुक्त परिवार में यदि कोई मकान बेचा गया है और ऐसा विक्रय बिना किसी आवश्यकता के हुआ है तो वह विक्रय संयुक्त परिवार में रहने वाली विधवा पर बाध्यकारी नहीं होगा। अतः मकान खरीदने वाला व्यक्ति उस समय तक विधवा को बेदखल नहीं कर सकता है जब तक कि विधवा कसे उचित निवास स्थान न प्राप्त हो जाये।

दाय की दो पद्धतियाँ – हिन्दू विधि के अन्तर्गत दाय की दो निम्नलिखित पद्धतियाँ हैं –

1. **मिताक्षरा पद्धति** – मिताक्षरा पद्धति संपूर्ण भारत में प्रचलित है। इस पद्धति के अन्तर्गत रक्त संबंधी को उत्तराधिकार के योग्य बनाया गया है। इसमें गोत्रज संबंधी को बंधुओं की अपेक्षा वरीयता दी जाती है। मिताक्षरा पद्धति में दाय योग्य संपत्ति को मिन्नलिखित दो भागों में विभाजित किया गया है –
 - अप्रतिबंध पद्धति
 - सप्रतिबंध दाय
2. **दायभाग पद्धति** – दायभाग पद्धति बंगाल और आयाम में प्रचलित है। दायभाग में दाय का आधार पारलौकिक हित का सिद्धान्त होता है। इस पद्धति में सपिण्ड को दाय का आधार बनाया जाता है। सनिष्ठ वह होता है जो पिण्डदान करे और मृतकपूर्वज को पारलौकिक लाभ कराये। इस प्रकार इस पद्धति में दाय का निदेशक सिद्धान्त धार्मिक गुण या अतिमिक लाभ होता है।

मिताक्षरा और दायभाग में प्रचलित सामान्य सिद्धान्त –

1. दाय कभी प्रसुप्तावस्था में नहीं होता – हिन्दुओं में जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो संपत्ति स्वतः ही उसके उत्तराधिकारियों को चली जाती है। अतः हिन्दू की सम्पत्ति पारिस के बिना नहीं रह सकती है। मृत स्वामी के पश्चात् नये स्वामी के संपत्ति के अधिकार ग्रहण करेन में एक क्षण कर भी अंतर नहीं रहता। इस नियम का एक अपवाद यह है कि यदि मृतक के समक्ष उसके प्रस्तुत दायाद के समय निकट का कोई दायाद गर्भ में होता है तो यह नियम लागू नहीं किया होता है वस्तुतः मृतक की मृत्यु के समय गर्भ में रिझ़ज़ित दायाद को दाय प्रयोजन के लिए अस्तित्व में माना जाता है।
2. जो संपत्ति एक बार निहित हो जाती है उसे छीना नहीं जा सकता – मृतक की मृत्यु के बाद जब संपत्ति एक बार उसके निकट के दायाद को उत्तराधिकार में मिल जाती है। तो पुनः उससे छीनी नहीं जा सकती है। परन्तु हिन्दू विधि में इस नियम के दो अपवाद हैं –
 - **गर्भस्थ दायाद** – किसी व्यक्ति की मृत्यु के समय यदि उसका कोई निकट दायाद गर्भ में उत्पन्न होन पर वह किसी दूर के दायाद में निहित संपत्ति को अनिहित कर देता है।
 - **दत्तक पुत्र** – प्राचीन विधि के अन्तर्गत यदि पिता की मृत्यु के दीर्घकाल के पश्चात् भी उसकी विधवा द्वारा कोई पुत्र दत्तक लिया जाता है तो पुत्र के अधार में किसी अन्य दायाद अथवा व्यक्ति में निहित अपने मृत पिता की संपत्ति को अनिहित कर देता है।
 - मृतक के लिए कोई बच्चा गोद लिये जाने पर भी यह नियम लागू नहीं होगा

टैगोर बनाम टैगोर में कहा गया कि उपरोक्त मामलों में संपत्ति का बँटवारा बाद में पैदा हुए उत्तराधिकारी में भी होगा यद्यपि उत्तराधिकार किसी व्यक्ति को मिल चुका है।

मिताक्षरा और दायभाग में अंतर

मिताक्षरा	दायभाग
मिताक्षरा पद्धति संपूर्ण भारत के प्रान्तों में ही प्रचलित है	दायभाग पद्धति केवल बंगाल में ही प्रचलित है
मिताक्षरा पद्धति के अनुसार उत्तराधिकार रक्त संबंध पर आधारित है।	दायभाग पद्धति पारलौकिक हित के सिद्धान्त पर आधारित है। इसके अन्तर्गत सपिण्ड को दाय का आधार बनाया जाता है।
मिताक्षरा शाखा में उत्तरजीविता का नियम लागू होता है।	दायभाग शाखा में उत्तरजीविता का सिद्धान्त लागू नहीं होता है।
मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत अविभाजित कुटुम्ब के सदस्य अविभाज्य अवस्था तक अपने हित का अन्य संकरण नहीं कर सकते हैं।	दायभाग शाखा के कुटुम्ब का कोई भी सदस्य बिना विभाज्य हुए अपने हित का अन्य संकरण नहीं कर सकता है।
मिताक्षरा के वारिसों को निम्नलिखित में विभाजित किया जाता है – 1. गोत्रज सपिण्ड 2. समानोदक 3. बंधु	दायभाग के दायादों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से होता है– 1. सपिण्ड 2. साकुल्य 3. समानोदक
मिताक्षरा में संपत्ति को न्यगमन की दृष्टि से निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है— 1. पैतृक संपत्ति 2. स्वअर्जित संपत्ति	दायभाग में न्यगमन की दृष्टि से संपत्ति का विभाजन नहीं किया गया है।

अप्रतिबंध दाय और सप्रतिबंध दाय में अंतर

अप्रतिबंध दाय	सप्रतिबंध दाय
अप्रतिबंध दाय से तात्पर्य होता है जिस संपत्ति में कोई व्यक्ति जन्म से ही हकदार हो जाता है। वह संपत्ति अप्रतिबंध दाय कहलाती है।	जिस संपत्ति पर रूवकित का जन्म से अधिकार नहीं होता है किन्तु स्वामी की संतानहीनत मृत्यु के बाद होता है, सप्रतिबंध दाय कहलाती है।
इस प्रकार के स्वामी के जीवित रहते हुए भी इस पर तीन पीढ़ी तक के पुरुष संतानों को अधिकार बिना किसी अवरोध के होता है। क्योंकि संपत्ति के स्वामी के जीवित रहने पर भी संपत्ति पर कोई रोक नहीं लगी थी।	इसके अन्तर्गत संपत्ति का न्यगमन स्वामी के जीवनकाल में आधित रहता है। यह दाय केवल स्वअर्जित तथा पृथक् संपत्ति के संबंध में लागू होता है।
उदाहरण – क अपने पिता से उत्तराधिकार में संपत्ति प्राप्त करता है। उसके बदले में उसके एक पुत्र ख पैदा होता है। क का पुत्र ख जन्म से ही उस संपत्ति में सहादायिक बन जाता है आम संपत्तिम् आधे का हिस्सेदार हो जाता है। क के दाय की संपत्ति अप्रतिबंध दाय है क्योंकि उसके दाय में संपत्ति रहते हुए भी ख को उस संपत्ति में अपना हिस्सा लेने में कोई रुकावट नहीं होगी।	उदाहरण – क एक स्वअर्जित संपत्ति का स्वामी है। उसके दो पुत्र ख और ग हैं। जब तक क जीवित है उसको संपत्ति पर ख, ग का कोई अधिकार नहीं होगा। केवल क की मृत्यु पर ही ख और ग उस संपत्ति के हकदार होंगे। इस प्रकार क का जीवन ख तथा ग दो दाय प्राप्त करने में प्रतिबंध आरोपित करता है।

संभाव्य उत्तराधिकार या उत्तराधिकार का अवसर – सम्भाव्य उत्तराधिकार अथवा उत्तराधिकार का अवसर से तात्पर्य केवल उत्तराधिकार का अवसर है जो हिन्दू विधि में एक वयवित को प्राप्त होता है। अतः उत्तराधिकार के अधिकार को वैध रूप से हस्तातिरित नहीं किया जा सकता है। यदि ऐसा कोई हस्तातिरित होता है तो वह दाय प्राप्त करने वाले उत्तराधिकारी पर लागू नहीं होगा। उत्तराधिकार का अवसर परिवार में होने वाली उत्पत्ति और मृत्यु से घटता बढ़ता है। दाय विधि के अन्तर्गत संभाव्य उत्तराधिकार पर कोई निवर्तन मान्य नहीं समझा जाता है।

संपत्ति की न्यगमन – मिताक्षरा विधि से प्राप्ति हिन्दू पुरुष की संपत्ति के न्यगमन की रीति का निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित नियमों को ध्यान में रखना आवश्यक है –

1. जहाँ मृतक अपनी मृत्यु के समय अविभक्त तथा संयुक्त परिवार का सदस्य है जिसकों पारिभाषिक रूप से सहादायिकी कहा जा सकता है। वह उसका अविभक्त हक उसके सहादायिक को उत्तरजीवित के सिद्धान्त के अनुसार हिन्दू स्त्रियों के संपत्ति संबंधी अधिकार को दोडकर न्यागत होगा।
2. यदि मृतक मृत्यु के समय संयुक्त परिवार का था और उसने पृथक् भाग अथवा स्वार्जित संपत्ति छोड़ रखी है तो वह संपत्तिउत्तराधिकार म उसके उत्तराधिकारियों को चली जायें न कि सहादायिकों को।
3. यदि मृत्यु के समय मृतक एक मात्र उत्तरजीवी था, तो समस्त संपत्ति जिसमें सहादायिकी संपत्ति भी सम्मिलित है उसके उत्तराधिकारियों के चली जायेगी।
4. यदि मृतक मृत्यु के समय सहादायिकी से पृथक् था तो उसकी समस्त संपत्ति उसके उत्तराधिकारियों को मिलेगी।
5. तीसरा नियम यह ध्यान रखना चाहिए के जहाँ मृतक मृत्यु के सूय पुनः संयुक्त हो गया है तो उस द'गा में भी उसकी संपत्ति उत्तराधिकार से उत्तराधिकारियों में चली जायेगी।

गोत्रज सपिण्ड – गोत्रज सपिण्ड वे होते हैं जो मृतक से एक अविच्छिन्न पुरुष श्रंखला में संबंधित होते हैं गोत्रज सपिण्ड पारिभाषिक रूप में निम्नलिखित प्रकार से होते हैं –

1. मृतक की पुरुष व'ग परम्परा में 6 व'ग अर्थात् उसके पुत्र, पुत्र के पुत्र, पुत्र के पुत्र के पुत्र तथा इयी प्रकार 6 श्रणी के पु।
2. मृतक की पुरुष पूर्वज परम्परा में 6 पुरुषे और उनकी पत्नियाँ

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

3. मृतक के 6 पुरुषों में से प्रत्येक व”ा परम्परा में 6 व”ाज जो मृतक के सम्पारि”र्वक होते हैं।
4. मृतक की पत्नी, पुत्र और दोहित्र।

इस प्रकार कुल सपिण्ड $6+12+36+3 = 57$ होते हैं।

समानोदक — समानोदक उप रक्त संबंधियों को स्पष्ट करता है जो मृतक को तर्पण करते हैं अथवा वे और मृतक किसी उभयनियष्ट पूर्वज का तर्पण करते हैं।

समानोदक के अन्तर्गत मृतक के निम्नलिखित संबंधी आते हैं –

1. मृतक की व”ा परम्परा में 7वीं पीढ़ी से लेकर 13वीं पीढ़ी तक के व”ाज = 7
2. मृतक के पूर्वजों की परम्परा में 7वीं पीढ़ी से लेकर 13वीं पीढ़ी तक के पुरुषे = 7
3. मृतक के 1 से 6 पीढ़ी तक के पुरुषों की व”ा परम्परा में प्रत्येक की 7वीं से 13वीं पीढ़ी तक के व”ाज जो मृतक के सांपारि”र्वक थे = 42
4. मृत की 7वीं पीढ़ी से लेकर 13वीं पीढ़ी तक के पुरुषों की व”ा परम्परा में 1 से लेकर 13वीं पीढ़ी तक व”ाज = 91

इस प्रकार कुल समानोदक $7+7+42+91 = 147$

बंधु भिन्न गोत्रज सपिण्ड मृतक के वे सक्त संबंधी होते हैं जो मृतक भिन्न गोत्र के होते हैं और उन्हें बंधु कहा जाता है। पर्व विधि में बंधुओं में वे संबंधी आते थे जो स्त्रियों के द्वारा संबंधित थे तथा दसरे परिवार अथवा गोत्र के हो जाते थे। प्रत्येक बंधु किसी स्त्री के माध्यम से या अनेक स्त्रियों के माध्यम से मृतक से संबंधित होता है। मृतक के किसी सपिण्ड अथवा समानोदक के न होने की द”ा में दाय उसके बंधुओं को प्राप्त होती है।

मिताक्षरा के अनुसार बंधु तीन प्रकार के होते हैं –

1. **आत्म बंधु**
 - पिता की बहन का पुत्र
 - माता की बहन का पुत्र
 - माता के भाई का पुत्र
2. **पितृ बंधु**
 - पिता के पिता की बहन का पुत्र
 - पिता की माता का पुत्र
 - पिता की माता के भाई का पुत्र
3. **मातृ बंधु**
 - माता के पिता की बहन का पुत्र
 - माता कह माता की बहन का पुत्र
 - माता की माता के भाई का पुत्र

बंधु उत्तराधिकार हो सकते हैं — प्रत्येक बंधु उत्तराधिकारी नहीं हो सकते हैं। कौन बंधु उत्तराधिकारी हो सकते हैं, इस विषय में दो नियम हैं –

1. जो मृतक के 5 अ”ा तक के पूर्वजों सा व”ाज में आता हो और एक ही पूर्वज द्वारा संबंधित हो जो म1तक के 5 अ”ों तक में आता हो।
2. बंधु और मृतक का आपस में सपिण्ड संबंध

उत्तराधिकार का मूल सिद्धान्त — मिताक्षरा विणि के अनुसार उत्तराधिकार का मूल सिद्धान्त सगोत्रता है। मनु के अनुसार किसी विंष मूल की अनुपरिथ्ति में केवल सगोत्रता ही उत्तराधिकार का प्रमाण है। इस नियम का आधार यह है कि समीपीय उत्तराधिकार दमरस्थ उत्तराधिकारी को अपवर्जित कर देता है।

दाय की प्राचीन विधि का आधार मनु का पाठ ह। इसके अनुसार पुत्र के प”खत् सपिण्डों के निकट संबंधी मृत व्यक्त के धन के अधिकारी होते हैं।

सगोत्रता मुख्य विषय — मिताक्षरा के अन्तर्गत प्राथमिकता का नियम संबंधी की निकटता पर आधारित है अर्थात् सगोत्रता दाय भाग के अन्तर्गत धार्मिक गुण पर आधारित है अर्थात् पैतृक या मातृक पूर्वजों को धार्मिक लाभ प्रदान करन की सामर्थ्य पर आधारित है।

यद्यपि मिताक्षरा के अनुसार सपिण्ड का तात्पर्य मृतक और उस व्यक्ति में उसी पिण्ड का होना या रक्त संबंध होना है किन्तु प्रत्येक रक्त संबंधी दाय प्राप्त करने के अधिकार नहीं है। उत्तराधिकार के लिए संपिण्ड सीमित रूप में प्रयोग किया गया है और जिसमें केवल कुछ अ”ों तक रक्त संबंधी ही आते हैं। मिताक्षरा की परिभाषा के अन्तर्गत कुछ स्त्रियाँ जैसे व”ाजों की पुत्रियाँ और सांपारि”र्वक सपिण्ड हैं क्योंकि इसमें रक्त संबंध होता है। किन्तु वास्तव में समान्य नियम के अनुसार जब तक सृतियों में व टीकाओं से या विधान द्वारा विंष रूप से न कहा गया हो तब तक हिन्दू विधि में स्त्रियों को दाय से अपवर्जित कर दिया जाता है।

जटीन्द्रनाथ राय बनाम नगेन्द्रनाथ के मामले में कहा गया कि यह कल्पना करना असत्य है कि मिताक्षरा में दाय की व्यवस्था में आध्यात्मिक लाभ के सिद्धान्त के स्थान नहीं दिया गया है। निःसंदेह रक्त संबंध की सगोत्रता प्रथम परीक्षण है। लेकिन मनु और वीर मित्रोदय की बहुत सी मूल व्यवस्थाओं में दाय और अन्त्येष्टि संस्कार का कई स्थानों पर संबंध दिखाया गया है और सह संबंध आध्यात्मिक लाभ पहुँचाने को सगोत्रता की माप मानता है जहाँ पर संबंध का अ”ा कोई निर्देश नहीं करता।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

उत्तराधिकारियों के वर्ग – मिताक्षरा पद्धति ने उत्तराधिकारियों को दो भागों में बँटा है –

1. सगोत्रज सपिण्ड
2. भिन्न गोत्र सपिण्ड

सभी गोत्र सपिण्ड” सपिण्ड होते हैं और भिन्न गोत्र सपिण्ड बंधु होते हैं। मृतक की बहिन द्वारा संबंधित व्यक्ति बंधु होते हैं।

इस प्रकार उत्तराधिकारियों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. सपिण्ड
2. समानोदक
3. बंधु

दायभाग विधि के अन्तर्गत उत्तराधिकार – दायभाग विधि के अनुसार उत्तराधिकार के दो मुख्य सिद्धान्त हैं –

1. दायभाग द्वारा शासित होने वाले मृतक हिन्दू की संपत्ति उत्तराधिकार द्वारा जाती है। इसमें उसकी अविभाजित संपत्ति संयुक्त रहती है।
2. उत्तराधिकार आध्यात्मिक लाभ देने की सामर्थ्य द्वारा शासित होता है।

ब्रागाल के दाय का सिद्धान्त पिण्ड की उपपत्ति पद आधारित है, अर्थात् पावन श्राद्ध करेन पर। यह श्राद्ध 12 श्रवर्द्धों में सबसे महत्वपूर्ण श्ररद्ध माना जाता है।

दाय भाग शाखा में सहदायिकी नहीं होती है। एक व्यक्ति के जीवित रहते अन्य कोई व्यक्ति संपत्ति में किसी भी प्रकार का अधिका प्राप्त नहीं कर सकता है।

तीन प्रकार की आहुतियाँ – अन्त्येष्टि आहुतियाँ तीन प्रकार की होती हैं जिसे व्यक्ति अपेन मृतक पूर्वज को यह आहुतियाँ देते हैं ये छे अविभाजित आहुति विभाजित आहुति और जलात्रजलि। प्रथम आहुति सपिण्ड दे सकता है दूसरी आहुति साकुल्य दे सकता है और तीसरी आहुति समानोदक दे सकता है।

उत्तराधिकारियों के वर्ग – तीन प्रकार की आहुतियों के समान ही तीन उत्तराधिकारियों के भी वर्ग हैं –

1. सपिण्ड
2. साकुल्य
3. समानोदक

सपिण्डों में उत्तराधिकार का कम निर्धारित करने वाले नियम – सपिण्डों में उत्तराधिकार का कम निर्धारित करेन वाले सामान्य नियम निम्नलिखित प्रकार से हैं –

1. मृतक को पिण्डदाना करेन वाले को मृतक से पिण्डदान प्राप्त करेन वाले के समक्ष वरीयता प्राप्त होत है। इसीलिए तीन पीढ़ी तक के व”ज पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र को पूर्वज एवं संपाद्यवर्कों के समक्ष प्राथमिकता मिलती है।
2. जो पितृपक्ष और मातृपक्ष दोनों के पूर्वजों को पिण्डदान करता है उसे जो केवल पितृपक्ष के पूर्वजों को पिण्डदान करता है, के समक्ष वरीयता प्राप्त होगी।
3. पितृपक्ष के पूर्वजों को पिण्डदान करने वरले की अपेक्षा वरीयता प्राप्त होगी।
4. जो अधिक संख्या में एक विषयप्रकार के पिण्डों का दान करता था, उन व्यक्तियों के समक्ष में वरीयता प्राप्त करता है तो कम संख्या में पिण्डों का दान करता है। जहाँ इस प्रकार के पिण्डों क संख्या समान होती थी वहाँ जो निकटतर पूर्वजों को पिण्डदान करता था वह दूर के पूर्वजों को होने वाले की अपेक्षा अग्रता प्राप्त करता था।

दाय से अपवर्जन – पूर्व विधि के अनुसार जो व्यक्ति मृतक का श्राद्ध करन में अक्षम होते थे उन्हें दाय प्राप्त करेन का अधिकार नहीं होता था।

डा. जोली के अनुसार – जो व्यक्ति कार्य करने के अयोग्य हो गये है, भौतिक, पारलौकिक अथवा नैतिक अषेयताओं के कारण दाय प्राप्त करने से अपवर्जित किये जाते हैं। दुष्कर्मों को करने वाला तथा जाति से च्युत व्यक्ति सामाजिक आधारों पर दाय प्राप्त करने से अपवर्तित किया जाता था।

मनु के अनुसार – जो व्यक्ति नपुसक पतित जन्मान्ध बधिर पागल जड़ गूँगा तथा इन्द्रिय शून्य है। वे संपत्ति में अँ’ प्राप्त करेन के अधिकारी नहीं होते। याज्ञवल्क्य का कथन है कि जाति से बकहष्टृत तथा उसका नपुसक पुत्र पागल जड़ अंधा असाध्य रोग से पीड़िम व्यक्ति दाय प्राप्त नहीं कर सकते परन्तु भरण पोषण के अधिकारी होते हैं।

कोई भी उत्तराधिकारी अग्रलिखित निर्योग्यताओं के आधार पर दाय से अपवर्जित किया जाता था –

1. **शारीरिक निर्योग्यताएँ** – वे व्यक्ति जो जन्म से अंधे, बहरे, गूँगे, लगड़े अंगविहीन नपुसक हैं दाय प्राप्त करने के अधिकारी नहीं हैं इसी प्रकार वे व्यक्ति जो किसी ऐसी असाध्य बीमारी जैसे गंभीर एवं उग्र प्रकार के कुष्ठ रोग आदि से पीड़ित होते हैं दाय प्राप्त करेन के अधिकारी नहीं हैं। ये समस्त निर्योग्यताएँ बाद में हिन्दू दाय अधिनियम, 1928 द्वारा समाप्त की दी गई थी और इसके प”चात् उपरोक्त आधारों पर कोई भी व्यक्ति दाय से वंचित नहीं किया जा सकेगा।
2. **मानसिक निर्योग्यताएँ** – मानसिक निर्योग्यता के अन्तर्गत जन्मजात जड़ता तथा पागलपन आता था। पागलपन का जन्मजात अथवा असाध्य होना आव”यक नहीं था। केवल दाय प्राप्त करने के समय पागलपन होने से कसेई व्यक्ति दाय प्राप्त करने के आयोग्य समझा जाता था।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

जड़ता सदैव जन्मजात होती थी। जो पागलपन अथवा जड़ता निर्योग्यता का आधार मानी जाती थी उसका गंभीर प्रकार का होना आवश्यक था।

- हिन्दू दाय अधिनियम 1928 के अन्तर्गत पागलपन तथा जड़ता को निर्योग्यता के रूप में लागू होने के लिए उसका जन्मजात होना आवश्यक था।
3. **नैतिक निर्योग्यतायें** – नैतिक निर्योग्यता के अन्तर्गत स्त्री का अयाध्वी होना आता था। दायभाग में असाधिता के आधार पर विधवा पत्नी पत्रियों एवं माता को भी दाय प्राप्त करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता था।
 4. **धार्मिक निर्योग्यतायें** – धार्मिक निर्योग्यता के अन्तर्गत व्यक्ति का जाति से च्युत होना या धर्म परिवर्तन आता था। ऐसा व्यक्ति जो जाति से च्युत हो जाता था या धर्म परिवर्तन कर लेता था दाय प्राप्त करने से वंचित कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त ऐसा व्यक्ति जो संसार त्याग कर संयासी हो गया था, वैराग्य धारण कर लेता था, दाय प्राप्त नहीं कर सकता था। क्योंकि ऐसे व्यक्ति के संन्यास ग्रहण कर लेने पर दसकी व्यावहारिक मृत्यु मानी जाती थी। किन्तु जाति अधिनियम 1850 द्वारा जाति च्युत एवं धर्म परिवर्तन के आधार पर उत्पन्न निर्योग्यतायें समाप्त की गई हैं।
 5. **आचरण संबंधी निर्योग्यतायें** – कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति से दाय प्राप्त नहीं कर सकता था जिसके साथ वह जीवन भर लड़ाई झगड़ा करता रहा हों तथा सदैव दुर्भावना रखता रहा हो। मृतक की हत्या करेन वाला व्यक्ति मृतक की संपत्ति में दाय प्राप्त करने का अधिकारी नहीं रह जाता था। किसी भी व्यक्ति की हत्या करने वाला और उसके माध्यम से मृतक से दाय प्राप्त करेन का दावा करने वाले सभी व्यक्ति हत्या किये गये व्यक्ति से दाय प्राप्त नहीं कर सकते थे।

निर्योग्यता व्यक्तिगत होती थी। निर्योग्यता के आधार पर व्यक्ति ही वंचित होता था उसकी औसत संतान वंचित नहीं होती थी। किन्तु जाति च्युत हत्या करने वाले की संतान तथा उसके माध्यम से दावा करने वाले व्यक्ति भी दाय से वंचित होते थे। निर्योग्य व्यक्ति का दत्तक पुत्र केवल भरण पोषण पाने का अधिकारी होता था।

नियोग्य होने पर कोई विधिक बदलाव दाय प्राप्त करने से ही वंचित होता था, भरण पोषण को उसका अधिकार बना रहता था। नियोग्य व्यक्ति को दाय में प्राप्त होने वाली संपत्ति जिस व्यक्ति को मिलती थी वह नियोग्य व्यक्ति को भरण पोषण देने के लिए उत्तरदायी होता था।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 – उत्तराधिकार संबंधी नियमों के क्षेत्र में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 ने एक नयी कांती को जन्म दिया है। यह अधिनियम प्राचीन विधिकारों के बनाये गये नियमों में परिवर्तन करता है।

इतिहास – 19वीं शताब्दी के अंत सक ही हिन्दू विधि में परिवर्तन की माँग की जाने लगी थी। सन् 1941 में एक विषयों की कमेटी ने अवसीयती उत्तराधिकार तथा विवाह विधि से संबंधित दो ड्रॉफ्ट बिल समिति द्वारा 11 अप्रैल, 1947 की हिन्दू साहिता विधेयक तैयार करके विधान सभा के समक्ष रखा गया। सर्वप्रथम विवाह अधिनियम, 1955 तत्पर चात् 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पारित हुआ।

उददेश्य – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम का उददेश्य संपत्ति के विषय में स्त्री पुरुषों को एक समान अधिकार प्रदान करता है। इस अधिनियम के मुख्य उददेश्य निम्नलिखित प्रकार से हैं –

1. बिना वसीयत की संपत्ति को उत्तराधिकार में पाने के लिए समरूप हिन्दुओं के लिए एक समान विधि पद्धति का निर्माण करना।
2. लड़कियों को भी दाय का अधिकार देना।
3. धार्मिक प्रभाव के स्थान पर प्रेम और स्नेह के आधार पर उत्तराधिकारियों की सूची का निर्माण करना।
4. रिवाज के द्वारा किसी विधि के विषय का अभिन्न चय करने के बजाय विधि के विषय का अभिन्न चय करेन के बजाय विधि की लिखित पुस्तकों में विहित व्यवस्था के आधार पर प्रकाात करना
5. हिन्दू स्त्रियों को दाय प्राप्त करेन का स्पष्ट अधिकार प्रदान करना तथा दाय आदि से प्राप्त संपत्ति पर संपूर्ण स्वामित्व प्रदान करना
6. हिन्दू स्त्रीणन के संबंध में दायों की एक परियकृत सूची तैयार करना जिसमें संपत्ति के न्यागमन के लिए संपत्ति केस्त्रोत के आधार पर न्यागमन के अधिकारियों की सूची प्रदान करना।
7. दाय संबंधी पूर्व विधि की नियोग्यताओं को समाप्त करना

क्षेत्र – इस अधिनियम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। यह मुयलमान, ईसाई, पारसी या यहूदी धर्म के मानने वालों को छोड़कर समस्त भारतीय नागरिकों को सम्मिलित करता है। अधिनियम की धारा 2 में यह विहित है कि यह किन किन व्यक्तियों पर लागू होता है। यह समस्त हिन्दुओं पर लागू होता है।

अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ –

1. मिताक्षरा और दाय भाग शाखाये दाय संबंधी नियमों की दृष्टि से समाप्त हो गई है। अब समस्त देश के हिन्दुओं के लिए दाय की एकरूप विधि है।
2. वर्ण के आधार पर अर्थात् द्विज और शूद्र के आधार पर विधि के कतिपय उपबंधों में जो कठिनाई थी, वह समाप्त हो गई है।
3. दक्षिणी भारत में प्रचलित मातृ प्रधान प्रणाली में दाय के नियमों के बारे में विभेन्न अधिनियमों के उपबंध समाप्त हो गए हैं।
4. यह अधिनियम सभी हिन्दू बौद्ध जैन व सिक्खों के लिए लागू होता है।
5. यह अधिनियम ऐसे व्यक्तियों की संपत्ति के लिए लागू नहीं होता जिनसे विवाह के लिए विषय विवाह अधिनियम, 1954 के उपबंध लागू हाते हैं।
6. यह अधिनियम मिताक्षरा यह साझीदारी संपत्ति के लिए भी लागू नहीं होता यदि सह साझीदार अनुसूची (1) में उल्लिखित किसी स्त्री संबंधी अथवा ऐसी स्त्री संबंधी के माध्यम द्वारा दाय करेन वाले पुरुष संबंधी को छोड़कर नहीं मरता है।
7. हिन्दू नारी की सीमित संपदा अब समाप्त हो गई है। हिन्दू नारी अब जो संपत्ति दाय या अन्य रूप में प्राप्त करती है उसकी पूर्ण स्वामिनी होती है।
8. विभिन्न प्रकार के स्त्रीणन और परिणामस्वरूप उनके संबंध में उत्तराधिकार संबंधी नियम समाप्त हो गए हैं।
9. हिन्दू पुरुष की सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए एकरूप कम का उपबंध किया गया है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

10. हिन्दम नारी की संपत्ति के उत्तराधिकार के लिए एकरूप कम का उपबंध किया गया है।
11. अधिनियम द्वारा दिया गया उत्तराधिकार का कम पिण्डदान सिद्धान्त अथवा रक्त संबंध पर आधारित न होकर स्नेह तथा सहानुभूति पर आधारित किया गया है।
12. वह अधिनियम स्त्री उत्तराधिकारी तथा पुरुष उत्तराधिकारी में कोई भेदभाव नहीं रखता।
13. अधिनियम में दय भाग तथा मिताक्षरा शाखाओं के द्वारा विहित उत्तराधिकार के कम को समाप्त कर दिया है।
14. यह अधिनियम रोग, दोष तथा अंगहीनता के कारण दाय प्राप्त करने से अपवर्जित नहीं करता है।
15. धर्म परिवर्तन किये हुए हिन्दू का वॉज उसके संबंधियों से उत्तराधिकार प्राप्त करने के अयोग्य होता है।
16. अधिनियम के अन्तर्गत विधवा, अविवाहित स्त्री तथा पति द्वारा त्यागी हुई अथवा पृथक् हुई स्त्री को अपने पिता के घर में रहने का अधिकार दिया गया है।
17. किसी की हत्याकरने वाले को उत्तराधिकार से वर्जित नहीं हक्या गया है।
18. हिन्दू मिताक्षरा पद्धति का सदस्य इस अधिनियम के अन्तर्गत अपना भाग वसीयत कर सकता है।
19. इस अधिनियम के अन्तर्गत गर्भ में स्थित संतान को भी उत्तराधिकार का अधिकार प्रदान किया गया है।
20. इस अधिनियम के अन्तर्गत जहाँ दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी निर्वसीयत संपत्ति के उत्तराधिकार प्राप्त कर लेते हैं अपने अँ'ा को व्यक्तिपरक न कि पितृपरक रीति से यह अभोगी के रूप में प्राप्त करेंगे।
21. किसी सर्विदा अथवा करार के आधार पर अथवा किसी अधिनियम के अनुसायार अकेले एक दायद को प्राप्त होने वाली सम्पत्ति को छोड़कर अन्य प्रकार की अविभाज्य संपत्ति समाप्त हो गई है। दूसरे शब्दों में रुढ़िगत अविभाज्य सम्पदा समाप्त हो गयी है।
22. इस अधिनियम के अनुसार कोई भी हिन्दू पुरुष सहदायिकी संपत्ति में अपने हक को वसीयत द्वारा हस्तान्तरित कर सकता है।
23. अधिनियम की धारा 31 के अनुसायार हिन्दू दाय विधि अधिनियम, 1929 तथा हिन्दू स्त्री की संपत्ति अधिनियम 1937 निरस्त कर दिया गया है।

सपिण्ड – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 3(1) के अन्तर्गत सपिण्ड को परिभाषित किया गया है। इस धारा के अनुसार –

एक व्यक्ति दूसरे का सपिण्ड कहा जाता है। यदि वे दोनों केवल पुरुषों के माध्यम से रक्त या दत्तक द्वारा एक दूसरे से संबंधित हो।

अतः जब एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति से रक्त या दत्तक ग्रहण द्वारा संबंधित होता है तो वह व्यक्ति दमसरे व्यक्ति का सपिण्ड या गोत्रज कहलाता है। अस प्रकार एक हिन्दू के पूर्वज और वॉज प्रथम पक्ष के उत्तराधिकार में आते हैं।

बंधु – एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति का बंधु कहा जाता है यदि वे दोनों रक्त या दत्तक द्वारा एक दूसरे से संबंधित हो, किन्तु केवल पुरुषों के माध्यम से नहीं है।

जब ऐ व्यक्ति किसी दमसरे से किसी स्त्री द्वारा संबंधित होता है तो उसे बंधु कहते हैं।

वेदा चेला बनाम सुब्रामनिया में यह निरूपति किया गया कि बंधुओं में विवाह संबंध भी संयुक्त होते हैं। जैसे बहिन का लड़का लड़की का लड़का।

सगा – यदि दो व्यक्ति एक ही माता पिता से पेदा हुए हैं तो उन्हें सगा कहा जायेगा। दूसरे शब्दों में कोई दो व्यक्ति एक दूसरे के सगे संबंधी जब कहलाते हैं जबकि वे एक पूर्वज से उसकी एक ही पत्नी से उत्पन्न हो। जैसे सगा भाई, सर्गी बहन।

सौतेले – कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे के सौतेले संबंधी तब होते हैं जबकि वे एक ही पूर्वज से उसकी भिन्न भिन्न पत्नियों से उत्पन्न हो। दूसरे शब्दों में दो व्यक्तियों को सौतेला तब कहा जाता है जबकि उनका पिता तो एक हो तथा माता अलग–अलग।

सहोदर – यदि दो व्यक्तियों की माँ एक है किन्तु पिता अलग है तो उन्हें सहोदर कहा जाता है। अतः दो व्यक्ति ऐ दूसरे के सहोदर तब कहे जाते हैं तब वे एक ही स्त्री पूर्वज से किन्तु भिन्न भिन्न पत्नियों से उत्पन्न हुए हों।

उत्तराधिकारी – उत्तराधिकारी से अभिप्राय किसी ऐसे व्यक्ति से है वाहे वह पुरुष हो या नारी जो निर्वसीयत की संपत्ति का उत्तराधिकारी होने का इस अधिनियम के अधीन हकदार है। इस प्रकार इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई व्यक्ति बिना वसीयत की गई संपत्ति को पाने का हकदार है तो वह उत्तराधिकारी कहलायेगा, किन्तु इतना ध्यान रखना चाहिए कि किसी मृतक के दायद होने का प्र० न तभी उठता है जबकि मृतक बिना वसीयत किये हुए मरा हो, चाहे पूर्ण संपत्ति के संबंध में अथवा उसके किसी भाग के संबंध में।

बिना वसीयती – कोई व्यक्ति निर्वसीयत संपत्ति को छोड़ कर मरा आ माना जाता है यदि उसने अपनी संपत्ति का वसीयती निवर्तन नहीं कर दिया है। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति को थोड़ा भी भाग ऐसा छोड़ता है जिसका वह वसीयत से निवर्तन नहीं करता तो उस संपत्ति के संबंध में निवार्तन वसीयती माना जायेगा। अतः यदि कोई व्यक्ति बिना वसीयत किये हुए ही मर जाता है तो ऐसा व्यक्ति निर्वसीयती कहलाता है। यदि वसीयत प्रभावहीन होगी तो भी ऐसा व्यक्ति निर्वसीयती कहलायेगा।

संबंधित – संबंधित का तात्पर्य वैध सगोत्रता से होता है। सगोत्रता सगे खून से संबंध या दत्तक ग्रहण से होती है।

यदि एक पिता से अनेक संताने उत्पन्न होती हैं तो वे सभी आपस में भई अहन होगी। अवैध संतानों के औसत वॉज उनसे और परस्पर एक दूसरे से संबंधित होगे। इसका तात्पर्य सह है कि अवैध व्यक्ति की वैध संतान उससे संबंधित मानी जायेगी। इसी प्रकार एक ही माता की दो अवैध संताने आपस में संबंधित मानी जायेगी।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

अलियसंतान विधि – अलियसंतान विधि से वह विधि अभिप्रत है जो उस व्यक्ति को लागू है जो यदि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पारित न हुआ तो मद्रास अलिय संतान अधिनियम, 1949 द्वारा रुढ़िगत अलियसंतान विधि द्वारा उन विषयों के बारे में शासित होता जिनके लिए अधिनियम में उपबंध किया गया है। यह विधि दक्षिण भार के कुछ क्षेत्रों में प्रचलित मातृ पक्ष प्रधान विधि थी। इसके दाय का अधिकार माता के संबंध के आधार पर निर्धारित होता था।

मरुमक्कटायम विधि – मरुमक्कटायम विधि से विधि की वह पद्धति अभिप्रत है जो उन व्यक्तियों को लागू है –

1. जो यदि यह अधिनियम न पारित हुआ होता तो मद्रास मरुमक्कटायम, अधिनियम 1932 द्वावनकोर दर्जावा अधिनियम, द्वावनकोर नान्जिाड अधिनियम बेल्लाल अधिनियम द्वावनकोर क्षेत्रीय अधिनियम कृष्णवाका मरुमक्कटायम कोचीन मरुमक्कटायम अधिनियम या कोचीन नायर एक द्वारा उन विषयों के बारे में शासित होते जिनके लिए इस अधिनियम द्वारा उपबंध किया गया है अथवा
2. जो ऐसे समुदाय के हैं जिसके सदस्य अधिकितर तिरुवाङ्कु कोचीन या मद्रास राज्य में जैसा कि वह पहली नवम्बर 1956 के अव्यवहित पूर्व अस्तित्व में था, अधिवासी है और यदि वह अधिलिनियम पारित न हुआ होता तो उन विषयों के बारे में जिनके लिए दस अधिनियम द्वारा उपबंध किया गया है, विरासत की ऐसी किसी विधि के दाय का अधिकार माता के संबंध के आधार पर निर्धारित होता है किन्तु इसके अन्तर्गत अलिय संतान विधि नहीं आती।

नम्बूदरी विधि – नम्बूदरी विधि का तात्पर्य उस विधि से है जो कि यदि उत्तराधिकार अधिनियम न पास हुआ होता तो उन विषयों के संबंध में जिनके लिए उत्तराधिकार अधिनियम में उपबंध किया गया है, मद्रास नम्बूदरी अधिनियम 1932 कोचीन नम्बूदरी अधिनियम या द्वावनकोर मल्लापल्ल ब्राह्मण अधिनियम द्वारा प्रा॑सित होते। नम्बूदरी विधि भी द्वावनकोर और पद्रास के एक वर्ग में लोगों की रुढ़िगत विधि थी। यदि उत्तराधिकार अधिनियम पारित न हुआ होता तो उन व्यक्तियों को उन अधिनियमों में दी गई विधि लागू होती।

अधिनियम के अधिभावी प्रभाव – अधिनियम की धारा 4 के अनुसार इस अधिनियम में अन्यथा उल्लिखित उपबंधित छोड़कर –

1. हिन्दू विधि का कोई पाठ नियम सा निर्वचन या उस विधि का भाग रूप कोई भी रुढ़ि या प्रथा, जो इस अधिनियम के प्रारम्भ होने से ठीक पूर्व प्रवृत्त थी ऐसी बात के बारे में प्रभाव शन्य मानी जायेगी जिसके लिए अस अधिनियम में उपबंध किया गया है।
2. इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व प्रवृत्त किसी भी अन्य विधि का हिन्दुओं को लागू होना वहाँ तक बंद हो जायेगा जहाँ तक कि वह इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो।
3. शंकाओं को दूर करने के लिए यह धोषित किया जाता है कि इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी भी बात से वह नहीं समझा जायेगा कि वह कृषक जोत के खण्डीकरण के निवारण के लिए अथवा जोत की अधिकतम सीमा को नित करेन के लिए अथवा जोत अधिकारों के न्यायालय के लिए उपबंध कराने वाली प्रचलित विधि को प्रभावित करेगी।

उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 4(2)के अन्तर्गत यह उपबंधित है कि उपर्युक्त (1) और (2) के उपबंध सामायिक प्रचलित विधि को प्रभावित नहीं करेंगे। उपबंध (2) के अनुसार यदि इस अधिनियम के प्रारम्भ में कोई अधिनियम प्रचलित या और उसके उपबंध एवं प्रतिबंध हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम से असंगत नहीं हैं तो वह अधिनियम प्रचलित रहेगा।

अधिनियम की धारा 4(2)के अन्तर्गत यह उपबंधित है कि उपर्युक्त (1) और (2) के उपबंध सामायिक प्रचलित विधि को प्रभावित नहीं करेंगे। उपबंध (2) के अनुसार यदि इस अधिनियम के प्रारम्भ में कोई अधिनियम प्रचलित या और उसके उपबंध एवं प्रतिबंध हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम से असंगत नहीं हैं तो वह अधिनियम प्रचलित रहेगा।

संपत्तियाँ जिन पर यह अधिनियम लागू नहीं होता – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 5 के अन्तर्गत उन संपत्तियों का वधन किया गया है जिन पर यह अधिनियम लागू नहीं होता है। धारा 5 के अनुसार यह अधिनियम –

1. ऐसी किसी संपत्ति को लागू न होगा जिसके लिए उत्तराधिकार विवाह अधिनियम 1954 की धारा 2 में अन्तर्विष्ट उपबंधों के कारण भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम 1925 द्वारा विनियमित होता है।
2. ऐसी किसी संपदा को लागू न होगा जो कि किसी दे॒री राज्य के॑ निवारण के॑ द्वारा भारत सरकार से की गई किसी प्रसंविदार या करार के॑ निवंधनों द्वारा या इस अधिनियम के॑ प्रारम्भ से पूर्व पारित किसी अधिनियम के॑ निवंधनों द्वारा केवल एक दायद को॑ न्यागत होती है।
3. वलियम्स तम्सु॑न कोविलकम् पोतुम्बत्तु और कोविलकम् पोतुस्वत्तु को लागू न होगा जो कि महाराज कोचीन द्वारा 30 जून 1949 को प्रस्तुपापित उद्घोषणा द्वारा प्रदत्त व्यक्तियों के॑ आधार पर कोविलकम् भरण समिति द्वारा प्रा॑सित ह।

मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति में न्यागमन – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 के अन्तर्गत मिताक्षरा सहदायिकी की संपत्ति में न्यागमन के॑ संबंध में उवाध किया गया है। इस धारा के॑ अनुसार जबकि पुरुष हिन्दू हमिताक्षरा समां॑ता संपत्ति में हित अपनी मृत्यु के॑ समय रखत हए इस अधिनियम के॑ प्रारम्भ के॑ प्रभाव तर्फ़ा॑त मर जाये तब उस संपत्ति में उसका हित समां॑ता के॑ उत्तरजीवी सदस्यों पर उत्तरजीविता के॑ आधार पर न कि इस अधिनियम के॑ अनुकूल नयागत होगा।

परन्तु यदि मतक अनुसूची (1) में उल्लिखित नातेदारिनी को या उस वर्ग से उल्लिखित ऐसे नातेदार को, जो कि ऐसी नातेदारिनी के॑ माध्यम के॑ द्वारा दावा करता है, अपनी उत्तरजीवी छौड़ता है तो मिताक्षरा समां॑ता संपत्ति में मृतक का हित इस अधिनियम के॑ अधीन, न की उत्तरजीविता द्वारा यथास्थिति या निर्वसीयती उत्तराधिकार द्वारा न्यागत होगा।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

व्याख्या 1 – हिन्दू मिताक्षरा समाँत के हित के बारे में इस धारा के प्रयोजन के लिए यह समझा जायेगा कि वह हित संपत्ति में का वह अँ। है जो कि इस बात का विचार किये बिना कि यह समाँतविभाजन के लिए दावा करेन का हकदार था या नहीं यदि उसकी अपनी मृत्यु अव्यवहितपूर्व संपत्ति का विभाजन किया गया होता तो उसे बॉट में मिलता।

व्याख्या 2 – इस धारा के परन्तुक में अन्तर्विष्ट किसी बात का अर्थ न लगाया जायेगा कि जिस व्यक्ति ने मृत्यु से पूर्व समाँत से अपने को पृथक् कर लिया है उसे या उसके किन्हीं दायादों को वह निर्वसीयती की अवस्था में उस हित में अँ। पाने का दावा करने के लिए योग्य बनाती है। जिसके प्रति उस परन्तुक में निर्देश किया गया है।

विंवनथा बनाम लोकनाथ मे यह निरुपित किया गया है कि इस अधिनियम की धारा 6 के अन्तर्गत विभाजन की बात नहीं कही गई है बल्कि संपत्ति में किसी व्यक्तिर के हित का न्यागमन उपबंधित किया गया है।

मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति मे मृतक दायभागी के हिस्से का न्यागमन – मिताक्षरा सहदायिकी में मृतक दायभागी के हिस्से का न्यागमन उत्तराधिकार द्वारा होता है उत्तरजीविता के अधिकार द्वारा नहीं होता है।

उत्तराधिकार अधिनियम की अनुसूची के प्रथम वर्ग में निम्नलिखित स्त्रियाँ उत्तराधिकारी हैं –

1. पुत्री
2. विधवा पत्नी
3. माता
4. मृतक पुत्र की पुत्री
5. मृतक पुत्री की पुत्री
6. मृतक पुत्र की विधवा पत्नी
7. मृतक पुत्र के मृतक पुत्र की पुत्री
8. मृतक पुत्र के मृतक पुत्र की विधवा पत्नी
9. नारी अंधिनी के माध्यम से दावा करने वाला व्यक्ति मृतक की किसी पुत्री का पुत्र होता है।

इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति इन 9 संबंधियों मे से किसी एक को छोड़कर मरता है तो सहदायिकी संपत्ति का न्यागमन अधिनियम के अधीन होगा उत्तरजीविता द्वारा नहीं। उपर्युक्त संबंधियों के देखने से ज्ञात होता है कि ऐसा बहुत ही कम होता है कि कोई पुरुष इन संबंधियों में से किसी को छोड़कर मरे। इसलिए अधिकारी स्थितियों में मृतक का हित उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन न्यागत होगा।

अब मिताक्षरा सहदायिकी संपत्ति का न्यागमन धारा 6 के परन्तुक के प्राविधिन से प्रलासित होता है। अतः यदि सहदायिकी में अनुसूची के प्रथम वर्ग के स्त्री दायद नहीं हैं और न स्त्री दायद के मध्य से पुरुष दायद हैं तो किसी मृतक हिन्दू पुरुष का सहदायिकी संपत्तत में हक उपर्युक्त उत्तरजीविता के नियमानुसार होगा न कि इस अधिनियम की धाराओं के अनुसार। हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 6 के स्पष्टीकरण द्वारा मृतक की संपत्ति के घटने बढ़ने वाले भाग को स्थिर कर दिया है। इस उपबंध के अनुसार यदि मृतक ने अपनी मृत्यु के तुरन्त पूर्व अपने हित का बैंटवारा कराया होता और इस स्थिति में जो भाग उसे मिलताह वही उसकर हित माना जायेगा। दूसरे शब्दों मे धारा 6 के प्रयोजन के लिए सहदायिक को बैंटवारा का दावा करने का हक न होते हुए भी यह माना जायेगा कि उसने मृत्यु के पूर्व बैंटवारा कराया था।

स्पष्टीकरण (2) यह उपबंधित करता है कि यदि किसी सहदायिकी ने मृतक के जीवनकाल में ही अपने को सहदायिकी से अलग कर लिया है अर्थात् अपने हित का बैंटवारा कर लिया है तो ऐसे व्यक्ति तथा उसके दायदों को मृतक को संपत्ति में से दायरूप में कुछ नहीं मिलेगा।

मृतक के जीवनकाजत में ही पृथक् हो गये सहदायिक को मृतक की सहदायिकी संपत्ति के हित में कोई अँ। प्राप्त न करने का प्रतिबंध स्त्री दायदों के अँ। को कम होने से बचाने के लिए किया गया है। दूसरे यह उपबंध पुत्रों के पिता से उसके जीवनकाल मे पृथक् होने के स्थान पर अविभक्त रहने की प्रेरणा देता है।

बासवितिम बनाम शारदामा मे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विधवा अनुसूची की वर्ग 1 की दायद होने के नाते सहदायिकी संपत्ति में जो हिस्सा छोड़कर उसका शवसुर मरा है उसमें अपने हिस्से का दावा कर सकती है।

पुरुषों के उत्तराधिकार के सामान्य नियम – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 8 से 13 के अन्तर्गत पुरुषों के उत्तराधिकार संबंधी सामान्य विधियों का उपबंध किया गया है अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत उत्तराधिकार के सामान्य नियम दिये गये हैं जो किसर पुरुष द्वारा निर्वसीयती संपत्ति छोड़कर मारने पर लागू होते हैं।

इस धारा के अन्तर्गत वारिस को संपत्ति के उत्तराधिकार के उद्देश्य से निम्नलिखित 4 भागों में बॉटा गया है—

1. अनुसूची के वर्ग (1) के संबंधी
2. अनुसूची के वर्ग (2) के संबंधी
3. मृतक के सगोत्र
4. मृतक के बंधु

किसी हिन्दू व्यक्ति कही मृत्यु यदि बिनार वसीयत के होती है तो दसकी संपत्ति का न्यागमन निम्नलिखित प्रकार से होगा –

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

1. सर्वप्रथम अनुसूची के वर्ग (1) में कहे गये उत्तराधिकारी आते हैं –

- पुत्र
 - पुत्री
 - विधवा पत्नी
 - माँ
 - पौत्र
 - पौत्री
2. यदि अनुसूची के वर्ग 1 में कहे गये उत्तराधिकारी नहीं हैं तो वर्ग 2 के व्यक्ति उत्तराधिकारी होंगे—
- पिता
 - लड़के की लड़की का लड़का; प्रपौत्री; भाई, बहन
 - प्रपौत्र; प्रपौत्री; प्रपौत्र; प्रपौत्री;
 - भाई का पुत्र; भानजा; भतीजी; भानजी
 - पितामह, दादी
 - पौत्र
 - पौत्री
 - बहू
 - प्रपौत्र
 - प्रपौत्री
 - मृतक पुत्र के मृतक की विधवा पत्नी
 - सौतेली माँ; भाई की विधवा पत्नी
 - चाचा; बुआ
 - नाना; नानी
 - मामा; मौसी

स्पष्टीकरण – इस अनुसूची में भाई माता या बहन के प्रति निर्देशों के अन्तर्गत उस भाई या बहन के प्रति निर्देश नहीं हैं जो केवल एकोदर या सहोदर रक्त संबंध के हैं।

अतः इस अधिनियम के अनुसार जब तक अनुसूची के वर्ग (1) का एक भी दायद जीवित रहेगा तब तक अनुसूची के वर्ग (2) का कोई भी दायद संपत्ति का अधिकार नहीं होगा।

अनुसूची वर्ग 3 के उत्तराधिकारी – मृतक का कोई भी प्रारम्भिक अथवा परवर्ती दायद न होने की स्थिति में संपत्ति मृतक के पितृ बंधुओं को प्राप्त होगी। पितृ बंधुओं पर पीढ़ीयों का कोई सीमाबंध नहीं है।

अनुसूची वर्ग 4 के उत्तराधिकारी – मृतक के किसी प्रारम्भिक दायद परिवर्ती दाष्ठ गोत्रज के न होने की स्थिति में संपत्ति अन्त में उसके बंधुओं को प्राप्त होती है।

अनुसूची वर्ग 4 के उत्तराधिकारी सभी मातृ बंधु चाहे कितनी ऊँची श्रेणी के होख जो अंतिम स्वामी से रक्त या दत्क के कारण पूर्णतः पुरुणों के द्वारा नहीं सम्भवतः एक दो या अधिक स्त्रियों क्षरा संबंधित हैं।

अनुसूची में के वारिसों के बीच उत्तराधिकार का कम – उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 9 के अन्तर्गत वर्ग 1 के संबंधी एक साथी और उन्य सभी संबंधियों को अपवर्जित करके इन्हें भागी होंगे।

वर्ग 2 के प्रथम प्रविष्टि में के संबंधी दूसरी प्रविष्टि में के संबंधियों की अपेक्षा अधिमान्य होगे। दूसरी प्रविष्टि में के वारिसों को तीसरी प्रविष्टि के वासरिसों की अपेक्षा अधिकार प्राप्त होगा और इसी प्रकार आगे कम से अधिकार प्राप्त होगा।

अनुसूची वर्ग 1 के दायदों में संपत्ति का वितरण – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत अनुसूची के वर्ग 1 के दायदों में संपत्ति के वितरण संबंधी कम का उल्लेख किया गया है। धारा 10 इस प्राकर है – निर्वसीयती की संपत्ति उसके दायदों में जो अनुसूची के वर्ग 1 में दिये गये हैं, निम्नलिखित नियमों के अनुसार विभाजित की जाएगी—

नियम 1 – निर्वसीयती की विधवा या यदि यदि एक सक अधिक विधवा हो तो सब विधवाएँ मिलकर एक अंश प्राप्त करेंगी।

नियम 2 – निर्वसीयती के उत्तरजीवी पुत्र और पुत्रियाँ और मामा प्रत्येक एक एक अंश प्राप्त करेंगी।

नियम 3 – निर्वसीयत के पूर्व मृत पति या पूर्व पुत्रियों से प्रत्येक की शाखा में आने वाले दायद मिलकर एक अंश लेंगे।

नियम 4 –

1. नियम 3 में निर्दिष्ट अंश का वितरण पूर्व मृत पुत्र की शाखा में वर्तमान दायदों के बीच इस प्रकार किया जायेगा कि उसकी अपनी विधवा या विधवाओं को उत्तरजीवी पुत्र, पुत्रियों को समान प्रभाग प्राप्त हो और उनके पूर्व मृत की शाखा को वेसा ही प्रभाग प्राप्त हो।
2. पूर्व मृत पुत्री की शाखा में आने वाले दायदों में इनका किया जायेगा कि उत्तरजीवी पुत्र और पुत्रियों को समान प्रीग प्राप्त हो।

नियम 1 – इस नियम के अतर्गत निर्वसीयती की विधवा पत्नी ऐ अंश की हकदार है। जहाँ निर्वसीयत एक से अधिक विधवाओं को छोड़कर मरा है, वहाँ सीधे विधवाएँ एक साथी एक अंश की हकदार होगी तथा वह ऐ अंश पुत्र अथवा पुत्री के बराबर होगा।

नियम 2 – दूसरे नियम के अनुसार प्रत्येक उत्तरजीवी पुत्र, उत्तरजीवी पुत्री तथा माता एक एक अंश हकदार है अर्थात् वितरण व्यक्तपरक होगा।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

नियम 3 – इस नियम के अनुसार प्रत्येक पमग्र मृत पुत्र तथा पूर्व मृत पुत्री को शाखा में सभी पारिस ऐ अँ'। ग्रहण करेगे। यह वितरण व्यक्तिपरक नहीं वरन् पितृपरक होगा। जैसे यदि पूर्व मृत पुत्र ने एक विधवा पत्नी तीन पुत्र तथा चार पुत्रियों को छोड़ा है वहाँ सभी 8 वारिस एक अँ' के हकदार होगे न कि आठ अँ'ों के तथा प्रत्येक को 1/8 भाग प्राप्त होगा।

नियम 4 – नियम 4 के अनुप्रन के लिए पूर्मव मृत पुत्र अथवा पुत्री को प्रस्तावक रूप में माना जाता है पूर्व मृत पुत्र को प्रस्तावक केरूप में मानने पर उसके पुत्र, पुत्रियों तथा विधवा पत्नी उसके दायद हो जाते हैं। पूर्व मृत पुत्र के दायद मिलकर एक साथ एक अँ' प्राप्त करेंगे।

धारा 11 वर्ग 2 के वारिसों के उत्तराधिकार से संबंधित है। यह धारा तभी लागू होती है जब तक प्रथम वर्ग के वारिस नहीं हो। इस धारा के अनुसार निर्वसीयत की संपत्ति अनुसूची के वर्ग 2 में कह किसी प्रतिवादी में अलिखित वारिसों के बीच इस प्रकार विभाजित की जावेगी किअन्हेंसमान अँ' प्राप्त हो।

इस धारा में अलिखित भाई बहिन सहोदर मातृ पक्ष के भाई बहिन को सम्मिलित नहीं करता है।

धारा 12 के अन्तर्गत पितृ बंधुओं तथा मातृ बंधुओं की यथास्थिति को उत्तराधिकार का कम, निम्नलिखित अधिमान के नियमों के अनुसार निर्वाचित किया जायेगा –

नियम 1 – दो वारिसों में उसे अधिमान प्राप्त होगा जिसकी जावली की निकटता कम या बिल्कुल नहीं है।

नियम 2 – यदि पूर्व जावली की निकटता वही है या बिल्कुल नहीं है तो उस वारिस को अधिमानित किया जाता है जिसकी जावली की निकटता कम या बिल्कुल नहीं है।

नियम 3 – यदि ऐसा कोई वारिस नहीं है जिसे उपरावत नियम 1 या 2 के अनुसार अधिमान्य किया जा सके तो वे एक साथ प्राप्त करनेगे।

धारा 13 – यह धारा की विधि विहित करती है, यह धारा इस प्रकार है –

1. गोत्रजों एवं बंधुओं में उत्तराधिकार कम के निर्धारणके प्रयोजनों के लिए निर्वसीयती से वारियों की नातेदारी की गणना यथास्थिति ऊपर की या नीचे की डिग्री या दानों के अनुसार होगी।
2. ऊपर की डिग्री तथा नीचे की डिग्री की गणना निर्वसीयती को सम्मिलित करके की जावेगी।
3. प्रत्येक पीढ़ी सा तो नीचे कि डिग्री निर्मित करती है।

हिन्दू स्त्री की संपत्ति स संबंधित विधि – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के पारित होने से पूर्व संपत्ति के अधिकार के संबंध में हिन्दू स्त्री को सीमित अधिकार प्रदान किये गये थे। हिन्दू स्त्री का अन्य संकरण का उत्तराधिकार भी सीमित रूप से प्रदान किया गया था। नारी को दाय में प्राप्त हुई संपत्ति को ही को ही उपभोग करेन का अधिकार था। वह कानूनी आव"यकता, संपत्ति के लाभ के लिए तथा उत्तराभोगियों की सहमति से ही संपत्ति का अन्य संकरण कर सकती थी।

सन् 1956 ई. में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पारित हो जाने के बाद अब सभी संपत्तियों पर हिन्दू महिलाओं को अधिकार प्रदान किये गये हैं।

इस अधिनियमकी धारा 14 के अन्तर्गत यह उपबंध किया गया है कि – “हिन्दू नारी द्वारा अधिकृत कोई संपत्ति चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व या प”चात् अर्जित की गई हो, पूर्ण स्वामी के रूप में, न कि सीमित के रूप में धारित की जायेगी।”

व्याख्या – इस उपधारा में संपत्ति के अन्तर्गत वह अचल और चल संपत्ति ह जो हि हिन्दू नारी ने विशसत द्वारा या विभाजन में या भरण पोषण या भरण पोषण की बकाया के बदले में या दान द्वारा किसी व्यक्ति से, चाहे वह नातेदार हो या न हो, अपने विवाह के पूर्व या विवाह के समय या प”चात् अथवा अपने कौंगल सा परिश्रम द्वारा अथवा कय द्वारा या चिरभोग द्वारा या किसी अन्य रीति से, चाहे वह कैसी ही क्यों न हो, अर्जित की है और ऐसी संपत्ति भी है जो किइस अधिनियम के प्रारम्भ होने के अव्यवहृत पूर्व स्त्रीधन के रूप में स्वयं उसके द्वारा आरित थी।

उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट को बात किसी ऐसी संपत्ति के संबंध में लागू नहीं होगी जो दान के जरिए या इच्छापत्र या अन्य किसी लिखित के अधीन या व्यवहार न्यायालय की अज्ञप्ति या आदें। के अधीन अर्जित संपत्ति हो जिसमें कि दान इच्छा पत्र या अन्य लिखित या अज्ञप्ति या आदें या पंचाट को शर्त निवधित स्वतंत्र ही विहित करती है।

इस प्रकार इस धारा के अन्तर्गत हिन्दू नारी अब अपने कब्जे की संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी होती है।

संपत्ति के अन्तर्गत चल और अचल दोनों प्रकार की संपत्ति सम्मिलित है। हिन्दू स्त्री संपत्ति निम्नलिखित रूप में पा सकती है –

1. दाय या उत्तराधिकार द्वारा
2. विभाजन द्वारा
3. पोयाण के बदले में या पोयाण के बकाया के रूप में
4. विवाह से पूर्व या बाद में किसी भी व्यक्ति द्वारा चाहे संबंधी हो या न हो उसे भेट के रूप में मिली
5. स्वयं की कमाई द्वारा प्राप्त
6. खरीद द्वारा या भोगाधिकार द्वारा

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

7. किसी अन्य प्रकार से
8. इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व स्त्री धन के रूप में रखीगई संपत्ति

सभी प्रकार की प्राप्ति संपत्ति उपधारा (1) में वर्णित संपत्ति के रूप मानी जायेगी, लेकिन कृषि योग्य भूमि में का"तकारी के अधिकार इस धारा के अन्तर्गत नहीं आते।

किन्तु संपत्ति की उपर्युक्त परिभाषा के अन्तर्गत निम्नलिखित संपत्ति नहीं आती है –

1. इच्छापत्र या अन्य प्रकार से या
2. दीवानी न्यायालय के आदें"। या डिकी द्वारा प्राप्त संपत्ति
3. जहाँ पर कोई भेट, इच्छापत्र या कोई अन्य लिखत या पंचाट के अन्तर्गत कोई आज्ञापत्र आदें"। या पंचाट किसी संपत्ति को सीमित या निर्धारित करते हो।

हिन्दू स्त्री की संपत्ति के पूर्ण निहित हाने के परिभाषा – हिन्दू स्त्री की की संपत्ति के पूर्णतः निहित होने से निम्नलिखित परिणाम होते हैं –

1. जिस संपत्ति का पूर्ण अधिकार हिन्दू स्त्री को मिल गया है, उस संपत्ति पर से उत्तरभोगी का अधिकार समाप्त हो गया है। दूसरे शब्दों म कहा जा सकता है कि हिन्दू स्त्री के स्वयं के उत्तराधिकारी उसकी मृत्यु के प"चात् संपत्ति को अधिनियम की धारा 15 और 17 के अनुसार पायेंगे।
2. हिन्दू स्त्री को संपत्ति के निस्तारण का पूर्ण अधिकार होता है।
3. अपनी संपत्ति के अन्य संकरण के लिए कोई वैध आव"यकता दिखाने की अब उसे आव"यकता नहीं है। अपनी संपत्ति का दान वह किसी भी व्यक्ति को कर सकती है। वह इच्छा पत्र द्वारा भी किसी भी व्यक्ति को अपनी संपत्ति दे सकती है। और इस प्रकार से अपने उत्तराधिकारियों को वंचित कर सकती है।
4. टैक्स के लिए भी वह पृथक् करदाता हो गयी है। विवाहित स्त्री की संपत्ति कर आय उसके पति की संपूर्ण आय पत्र में नहीं जोड़ी आयेगी। यदि उसकी आय आय-कर देने योग्य समझी जाती है तो वह कर निर्धारण स्वयं उसके नाम से होगा। उसे पृथक् करदाता होने के कारण अपने प्रतिलाभ विवरण भी आखिल करने पड़ेगे।

स्त्री संपत्ति के उत्तराधिकार के नियम – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 14, 15 तथा 16 में हिन्दू स्त्री की संपत्ति के उत्तराधिकार के नियमों का वर्णन किया गया है।

धारा 14 के अनुसार, हिन्दू नारी द्वारा अधिकृत कोई संपत्ति चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के पूर्व या प"चात् अर्जित की गई हो, पूण स्वामी के रूप में धारित की जायेगी।

हिन्दू नारी की अवयवस्था में उत्तराधिकार के साधारण नियम –

1. निर्वसीयत मारने वाली हिन्दू नारी की संपत्ति धारा 16 में उपवर्णित नियमों के अनुकूल –
 - प्रथमतः पुत्रों और पुत्रियों और पति को
 - द्वितीयतः पति के दायादों को
 - तृतीयतः माता और पिता को
- न्यायगत होगी।
2. उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी –
 - अपने माता या पिता से नारी हिन्दू दाय में प्राप्त पुत्र या पुत्री के अभाव में उपधारा (1) में अन्य दायादों को उसमें अल्लिखित कम में न्यायगत न होकर पिता के दायादों को न्यायगत होगी और
 - अपने पति या अपने श्वसुर से हिन्दू नारी द्वारा दाय में प्राप्त कोई संपत्ति मृतक के किसी पुत्र या पुत्री के अभाव में उपधारा (1) में निर्दिष्ट अन्य दायादों को उसमें अल्लिखित कम में न्यायगत न होकर पति के दायादों को न्यायगत होगी।

सीता लक्ष्मी अम्मल बनाम मैथ्यू वैंकट रामा अच्यंगर के विवाद में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अत्यंत महत्वपूर्ण निर्णय दिया। इस वाद में न्यायालय ने यह सम्मेलित किया की यदि किसी हिन्दू महिला की मृत्यु हो जाय और उस समय उसकर कोई पुत्र, पुत्री या पति जीवित न हो जो ऐसी द"ा में उसकी पुत्रवधू स्पतः ही उसकी पारिस बन जायेगी। इस वाद में न्यायालय न यह भी प्रतिपादित किया की लिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 15(1) (ब) के अन्तर्गत आने वाल हिन्दू महिला का वारिस कौन हो, इस बात का निर्णय करने के कम में न्यायालय ने कहा कि इस मामले में उत्तराधिकारी तय करने के लिए उसकी मृत्यु की तिथि तक जाने की जरूरत नहीं है। उत्तराधिकारी का निर्धारण, पति की मृत्यु के समय से नहीं बल्कि पत्नी की मृत्यु के समय से किया जाना चाहिए, क्योंकि उत्तराधिकार का सवाल सामान्तः उसकी मृत्यु के बाद ही उठता है। उच्चतम न्यायालय ने इस बात के साथ साथ यह भी स्पष्ट करते हुए कहा कि यदि सास की मृत्यु केसूय उसके पति का कोई उत्तराधिकारी है जो उसके मृत पुत्र की विधवा के मानदंडों पर सही है तो वह भी उत्तराधिकारी माना जायेगा।

हिन्दू नारी के दायादों में उत्तराधिकार का कम और वितरण रीति – धारा 15 में निर्दिष्ट दायादों में उत्तराधिकार का कम और उन दायादों में निर्वसीयती की संपत्ति कर वितरण निम्नवर्ती नियमों के अनुसार होग, अर्थात् –

नियम 1 – धारा 15 की उपधारा (1) में उल्लिखित दायादों में से पहली प्रवृष्टि में के दायादों को किसी अनुवर्ती प्रवृष्टि में के दोयादों की तुलना में अधिमान प्राप्त होगा और एक ही प्रवृष्टि वाले दायाद साथ साथ अभागी होंग।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

नियम 2 – यदि निर्वसीयता को कोई पुत्र या पुत्री अपनी ही कोई संतान निर्वसीयत की मृत्यु के समय जीवित छोड़कर निवसीयत के पूर्व मर जाता या जाती है तो ऐसे पुत्र या पुत्री की संतान परस्पर वह अँग लेगी जिसे कि यदि निर्वसीयती की मृत्यु के समय ऐसा पुत्र या पुत्री जीवित होता या होती तो वह लेता या लेती।

नियम 3 – धारा 15 की उपधारा (1) के खण्ड (ख), (घ) और (ड) में और उपधारा (2) में निर्दिष्ट दायादों को निवसीयती की संपत्ति उसी कम में और उन्हीं नियमों के अनुसार न्यायगत होंगी जो कि यदि संपत्ति यथारिति पिता कि या माता की या पति की होती और निर्वसीयत की मृत्यु के अव्यवहित प”चात् उस संपत्ति की बाबत निवसीयत रहकर ऐसा व्यक्ति कर गया होता, तो लागू होते।

उत्तराधिकार के सामान्य नियम – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के अन्तर्गत धारा 18 से 28 तक उत्तराधिकार के सामान्य नियम निम्नलिखित प्रकार से उपबंधित किये गये हैं –

1. सभी नातेदारी को सौतेली नातेदारी पर अधिमान प्राप्त है – यदि निर्वसीयत से सगा नामा रखने वाले दायादों की नातेदारी का स्वरूप अन्य बात के संबंध में एक समान हो तो निर्वसीयत से सगा नामा रखने वाले दायादों को सौतेला नामा रखने वाले दायादों की तुलना में अधिमान प्राप्त होगा।
2. दो या अधिक दायादों के उत्तराधिकारका ढंग – यदि दो या अधिक दायाद निवसीयत की संपत्ति के एक साथ उत्तराधिकारी होते हैं तो वे संपत्ति को –
 - इस अधिनियम के अभिव्यक्तरूपेण अन्यथा उपबंधित को छोड़कर व्यक्तिपरक न कि पितृपरक आधार पर लेगे और
 - सामान्य आभोगियों के रूप में न कि संयुक्त आभोगियों के रूप में लेगे।
3. गर्भ स्थित बालक का अधिकार – जो आलक निर्वसीयत की मृत्यु के समय गर्भ में स्थित था और जो कि तत्प”चात् जीवित पैदा हुआ है निर्वसीयत के दाय के भाग के विषय में उसके वही अधिकार होंगे जो कि यदि वह निर्वसीयत की मृत्यु के पूर्व पैदा हुआ होता तो उसके और ऐसी अवस्था में दायादों की तारीख से प्रभावशील होकर उसमें निहित समझा जायेगा।
4. समयामयिक मृत्युओं के विषय में उपधारा – जहाँ कि दो व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में मरे हैं जिनमें कि यह सदिश्व है कि क्या एनमें से कासेई और यदि कोई रहा तो कौन सा दूसरे की अपेक्षा उत्तरजीवी रहा, वहाँ जब तक कि प्रतिकुल सिद्ध न किया जाये, संपत्ति के उत्तराधिकार संबंधी सब प्रयोजनों के लिए उपधारणा की जायेगी कि कनिष्ठ ज्येष्ठ का उत्तरजीवी रहा।
5. कुछ अवस्थाओं में संपत्ति अर्जित करने का अधिमानाधिकार –
 - पहाँ कि निर्वसीयती की किसी स्थापार संपत्ति में या उसके द्वारा या तो अकेले और या दूसरों के साथ किये जाने वाले किसी कारबार में निहित अनुसूची के वर्ग में उल्लिखित दो या अधिक दायादों को इस अधिनियम के प्रभावमें कि तत्प”चात् नयागत होता है और सेसे दायादों में से कोठ उस संपत्ति या कारबार में अपने हित के हस्तान्तरण की प्रस्थापना करता है, वहाँ ऐसे हज़तान्तरित किये जोन के लिए प्रथापित हित को अर्जित करने का अधिकार दूसरे दायादों को प्राप्त होगा।
 - मृतक की संपत्ति में कोई हित जिस प्रतिफल के लिए धारा के आधीन हस्तान्तरित किया जा सकेगा, वह प्रक्षकारों के बीच किसी करार क अभाव में इस निमित्त अपने से किये गये आवेदन नर नयायालय द्वारा अवधारित किया जायेगा और यदि हित को अर्जित करने की प्रस्थापना करेन वाला एक व्यक्ति ऐसे अवधारित प्रतिफल के लिए उसे अर्जित करने के लिए राजी न हो तो ऐसा व्यक्ति आवेदन के या उससे प्रासंगिक सब खर्चों के देने के लिए दायितवाधीन होगा।
 - यदि इस धारा के अधीन किसी पिता के अर्जित करने की प्रस्थापना करने वाले अनुसूची के वर्ग (1) में उल्लिखित दो या अधिक दायाद हो तो उस दायाद को अधिमान दिया जायेगा जो कि हस्तान्तरण के लिए सर्वाधिक प्रतिफल देने की पै”क” हित करता है।
- व्याख्या – इस धारा में न्यायालय से वह अभिप्रेत है कि जिसके क्षेत्राधिकार की सीमाओं के अन्दर वह ऋग्वेदावार संपत्ति आरिथ है या कारबार किया जाता है और इसके अन्तर्गत ऐसा कोई अन्य न्यायालय है जिसके की राज्य सरकार राजकीय गजट में अधिसमचना द्वारा इस निमित्त उल्लिखित करे।
6. निवासगृह के लिए विषय उपबंध – जहाँ कि निर्वसीयत हिन्दू अनुसूची के वर्ग (1) में उल्लिखित पुरुष और स्त्री दायाद दानों के अपने पीछे उत्तरजीवी दोषता है और उसकी संपत्ति के अन्तर्गत उसके अपने परिवार के सदस्यों के पूर्णतः दखल में कोई पिवासगृह है, वहाँ इस अधिनियम में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए ऐसी किसी नारी दायाद का निवासगृह के विभाजन करेन के दावे का अधिकार तब तक उद्भूत न होगा जब तक कि पुरुष दायाद उसमें अपन कमागत अ”गौं का विभाजन करना पसंद न करें, किन्तु नारी दायाद उसमें निवास करने के अधिकार के लिए हकदार होगी।
- परन्तु जहाँ कि ऐसी नारी दायाद पुत्री वर्हा वह निवास गृह में रहने के अधिकार के लिए उस ही सूरत में हकदार होगी जिसमें कि वह अविवाहित है या अपने पति द्वारा अभिव्यक्त कर दी गई है या उससे पृथक् हो गई है या विधवा है।
7. पुनः विवाह करेन वाली विधवाये विधवा के रूप में दाय प्राप्त न का सकेरी – जो कोई दायाद पूर्वमृत पुत्र की विधवा, पूर्वमृत पुत्र के पूर्वमृत पुत्र की विधवा या भाई की विधवा के रूप में निर्वसीयत से नातेदारी रखती है, यदि वह उत्तराधिकार का सूत्रपात होने की तारीख में पुनः विवाहित है तो वह निर्वसीयत की संपत्ति में ऐसी विधवा के रूप में उत्तराधिकार पाने के लिए हकदार न होगी।
8. हत्यारा अयोग्य कर दिया गया है – जो व्यक्ति हत्यासा करता है या हत्या कोन में अभिप्रेरण करता है, वह हत व्यक्ति की संपत्ति या ऐसी कियी अन्य संपत्ति को जिसके उत्तराधिकार को अग्रसर करेन के लिए उसने हत्या की थी या हत्या करेन में अभिप्रेरण यिका था, दाय में पाने के लिए अस्थोग्य होगा।
9. दूसरा धर्म ग्रहण करेन वालों के वैज्ञान अयोग्य होगे – जहाँ कि इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व या पूर्व विवाह करेन के कारण हिन्दू नहीं रहा था या नहीं रह जाता है, वहाँ ऐसे धर्म परिवर्तन के पूर्व वैदा हुई उसकी संतति और उस संतति के वैज्ञान अपने हिन्दू नातेदारी में से किसी की संपत्ति दो दाय में प्राप्त करेन के लिए उस सूरत में के सिवाय अयोग्य होगे जिसमें कि ऐसी संतति के वैज्ञान उस समय हिन्दू है जबकि उत्तराधिकार का सूत्रपात होता है।
10. जबकि दायाद अयोग्य का दिये गये है तब उत्तराधिकार – यदि कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति को दाय में प्राप्त करेन में इस अधिनियम के अधीन अयोग्य कर दिया गया है तसे वह संपत्ति ऐसे नयागत होगी मानों कि ऐसा व्यक्ति निप्रसीयत के पूर्व मर गया हो।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

रोग संगहीनता अत्यादी से अयोग्यता न होगी – कोई व्यक्ति किसी संपत्ति का उत्तराधिर प्राप्त करेन से किसी रोग, संगहीनता या अंगवक्ता के आधार पर या इस नियम में उपबंधित को छोड़कर किसी अन्य आधार पर, चाहे वह कोई क्यों प हो, अयोग्य न होगा।

सुन्दरम बनाम सदाँौव मे यह अभिनिधारित किया गया कि धारा 19 क अन्तर्गत सहविधिवाँ सह अभोगी की प्रासिथति में होती है अतः किसी भी विधवा को यह अधिकार होगा कि वह अतिवारी को नियकासित करने के लिए सह विधवा को बिना पक्षकार बनाये हुए वाद संस्थापित करें।

प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त – प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त से हमारा अभिप्राय है पुत्र, पौत्र जिसका पिता मर चुका है तथा प्रपोत्र तथा पृथक् संपत्ति को एक साथ उत्तराधिकारम प्राप्त करते है। अतः जहाँ किसी व्यक्ति का पिता तथा पितामह मर चुका है वह अपने पिता तथा पितामह की संपत्ति का उत्तराधिकारी होगा। इसके अलावा पुत्र का पिता प्रपोत्र का पितामह मर चुका है वहाँपुत्र तथा पिता ऐ साथ पैतृक पूर्वजों की स्वार्जित संपत्ति को एक साथ उत्तराधिकार मे प्राप्त करें। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि पौत्र अपने मृत पिता का प्रतिनिधित्व करता है तथा प्रपोत्र अपने मृत पिता तथा मृत पितामह दोनों संपत्ति के बँटवारे के समय प्रतिनिधित्व करता है। प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का दमसरा आणार पैतृक संपत्ति पर उनका जन्म से स्वतंत्र लाभ प्राप्त करना रहा है। लिन्दम परिवार के अन्दर जब कोई व्यक्ति पैदा होता है तो पैदा होते हीवह पितामह की संपत्ति में अ०। पाने का हकदार हो जाता है क्योंकि वह अपने पितामहका प्रतिनिधित्व करता है। किसर एक व्यक्ति के मरने पर उसकी संपत्ति में पुत्र, पौत्र तथा प्रपोत्र सब एक साथ अ०। पाने के भागीदार होगे क्योंकि यही सब मिलकर दाय भागी का निर्माण करते है। इस सिद्धान्त के अनुसार मृतक को सम्मिलित कर चार डिग्री तक व०जों को लिया जायेगा। पाँचवां दायभागी में सम्मिलित नहीं किया जायेगा। इसलिए प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के अन्तर्गत केवल पुत्र, पौत्र तथा प्रपोत्र को ही सम्मिलित यिका गया है।

उदाहरण – क की मृत्यु के प”चात् उसके पुत्र ख, पौत्र ग₁ और ग₂ और प्रपोत्र घ₁, घ₂, घ₃ और एक प्रपोत्र द है

क की मृत्यु पर उसकी संपत्ति ख, पौत्रों ग₁ तथा ग₂ तथा प्रपोत्रों घ₁, घ₂ तथा घ₃ पर पहुँच जायेगी। द चूँकि मृतक से पाँचवी डिकी में हे अतः उसको हिस्सा नहीं मिलेगा। यहाँ ग₁ तथा ग₂ अपने पिता ग का तथा घ₁, घ₂ और घ₃ अपनेपितामह घ का प्रतिनिधित्व करते है।

संयुक्त परिवार – भारत में कथ्दू परिवार एक प्रचीन तथा महत्वपूर्ण संस्था है। हिन्दूसंयुक्त परिवार एक विस्तृत और व्यापक शब्द है। इसके अन्तर्गत वे सदस्य आते हैं जो संयुक्त परिवार का निर्माण करते है।

संयुक्त परिवार के सदस्य – सामान्यतः निम्नलिखित व्यक्ति परिवार के सदस्य समझे जाते है –

1. सपित्रयसंबंध अर्थात् पुरुष शाखा में उभयनिष्ठ पूर्वज के पुरुष व०ज
2. परिवार मे दत्तक ग्रहण किये जोन वाले व्यक्ति
3. उपर्युक्त किसी व्यक्ति की पत्नी
4. उनकी अविवाहित पुत्रियाँ
5. संपाँचक
6. पुरुष सदस्यों की पत्नी तथा विधवा पत्नी

संयुक्त परिवार की विशेषताएँ

1. संयुक्त परिवार का प्रबंध
2. संयुक्त परिवार की संपत्ति का उपभोग
3. स्वामित्व की एकता
4. परिवर्तन”ील हक
5. हकों की सामूहिकता
6. अन्य विषयाएँ

हिन्दू सहसाझीदारी – हिन्दू सहसाझीदारी सहदायिकी की एक छाटी संस्था होती है। जो सीमित सदस्यों से मिलकर बनी होती है।

संयुक्त हिन्दम परिवार का अवधारण एक यह साझीदारी से है जिसका एक उभयनिष्ठ पूर्वज हो तथा उसके पुरुष शाखाके पुरुष व०ज हो। समें उभयनिष्ठ पूर्वज से तीन पीढ़ों तक की पुयष संताने आती है। इस प्राकर हम देखते हैं कि कोई सहसाझीदारी एक उभयनिष्ठ पूर्वज से प्रारम्भ होती है यह सहसाझीदारी घटती बढ़ती रहती है। यह सहसाझीदारी विधि द्वारा निर्मित है न कि पक्षकारों केविचारों अथवा कृत्यों द्वारा उसका निर्माण हुआ है। इस प्रकार जन्म से या दत्तकग्रहण द्वारा ही कोई व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है, सहमति से नहीं हो सकता।

सहदायिकी की विषयाएँ – सहदायिकी की निम्नलिखित विषयाएँ होती हैं –

1. किसी व्यक्ति की तीसरी पीढ़ी तक के पारस्परिक पुरुष व०ज ऐसे व्यक्ति की पैतृक संपत्तियों मे जन्म से ही स्वामित्व अर्जित करते है।
2. ऐसे व०ज किसी भी समय विभाजन की माँग करके अपने अधिकारों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते है।
3. जब तक कि विभाजन नहीं हो जाता तब तक प्रतयेक सदस्य का स्वामित्व अन्य सदस्यों के साथ संयुक्त रूप से संपूर्ण संपत्ति पर होता है।
4. ऐसे सहस्वामित्व के परिणामस्वरूप उस संपत्ति पर सबका कब्जा होता है और सभी उपीोग करते है।
5. संपत्ति का कोई अन्य संकरण तब तक की वह आवश्यकता के लिए न हो जब तक सहदायिकों की सहमति प्राप्त न कर ली गई हो।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

6. मृत सदस्य का हित उसकी मृत्यु पर उत्तरजीवियों का हस्तांतरित हो जाता है। मिताक्षरा पद्धति के अनुसार सहदायिकी विधि की देन है और वह पक्षकारों के कार्य द्वारा सिवाय तब के उदभूत नहीं हो सकती जब तक कि दत्तक ग्रहण करेन वाले अपने पिता के साथ जहाँ तक कि प”चात् कथित की पैतृक संपत्ति का संबंध है सहसाझीदार बन जाता है।

सहसाझीदार संपत्ति – सहसाझीदार संपत्ति वह है जिसमें समस्त दायभागियों का संयुक्त अधिकार और संयुक्त स्वामित्व होता है। इस संपत्ति का न्यायमन उत्तरजीविता के निसम से होता है न कि उत्तराधिकार से। इस को संयुक्त कुटुम्ब की संपत्ति शामिल है –

इस संपत्ति में निम्नलिखित संपत्ति शामिल हैं –

1. पैतृक संपत्ति – पैतृक संपत्ति से पात्पर्य होता है निकटतम तीन पूर्वजों अर्थात् पिता, पितामह तथा प्रतितामह से दाय मेंप्राप्त की गई संपत्ति से होता है। यह संपत्ति संयुक्त परिवार के सभी सउस्यों के लिए संयुक्त उपभ्योगिता के लिए होती है। किसी भी व्यक्ति के हाथ में ऐसी संपत्ति होने पर उसके पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र इसमें जन्मतः हित प्राप्त करते हैं।
2. संयुक्त परिवार के सदस्यों द्वारा संयुक्त स्प में अंजित संपत्ति – जहाँ संयुक्त परिवार के सदस्य संयुक्त परिवार की संपत्ति की सहासता संयुक्त श्रम से अथवा अपने संयुक्त व्यापार से जो संपत्ति अंजित करत है वह सहसाझीदारी संपत्ति मानी जाती है।
3. संपत्ति जो समान कोष में डाल दी गई है – जब संयुक्त परिवार का कोई सदस्य अपनी स्वअर्जित संपत्ति को स्वेच्छा से और उस पर अपने पृथक् दाये अथवा अधिकार को छोड़ देने के आ”य से उसे परिवार की अविभाजित संपत्ति में मिला देता है तो वह संपत्ति सहसाझीदारसंपत्ति हो जाती है।
4. वह संपत्ति जो परिवार परिवार की संयुक्त संपत्ति की सहायता से अंजित की गई है – वह संपत्ति जो संयुक्त परिवार की सहायता से अंजित की जाती है सह सहसाझीदारी संपत्ति कहलाती है। ऐसी संपत्ति में परिवार की संपत्ति के प्राप्त आय का अर्जत किया जाना सम्मिलित है।

पृथक् संपत्ति –

1. सप्रतिबंध दाय
2. दान या वसीयत द्वारा प्राप्त संपत्ति
3. स्वअर्जित संपत्ति
4. बँटवारे में मिली संपत्ति
5. एकमात्र उत्तरजीवी सह दायिक की संपत्ति

सहभागीदारी (सहदायिकी) तथा संयुक्त हिन्दू परिवार में अंतर

सहभागीदारी (सहदायिकी)	संयुक्त हिन्दू परिवार
सहदायिकी संयुक्त परिवार के केवल कुछ निर्विचार सदस्यों के लिए होती है।	संयुक्त हिन्दू परिवार के सदस्यों की संख्या तथा समान वांजों की दूरी सीमित नहीं होती है।
सहदायिकी उन पुरुष सदस्यों तक ही सीमित होती है जो पूर्वज से उसकों सम्मिलित करके चार पीढ़ी तक आते हैं।	संयुक्त हिन्दू परिवार में इस प्रकार की कोई भी सीमितताएँ नहीं होती हैं।
सहदायिकी केवल पुरुष सदस्यों तक की सीमित होने के कारण अंतिम सहदायिकी की मृत्यु के बाद समाप्त हो जाती है।	संयुक्त हिन्दू परिवार ऐसे सहदायिकी की मृत्यु के प”चात् भी स्थिर रहता है समाप्त नहीं होता है।
प्रत्येक सहदायिकी या तो संयुक्त परिवार होता है या उसका भाग होता है।	प्रत्येक संयुक्त परिवार सहदायिकी नहीं है।
सहभागीदारी या सहदायिकी में वे सदस्य आते हैं जो जन्म से ही संपत्ति में हक प्राप्त करेन के अधिकारी होते हैं तथा उस संपत्ति को स्वेच्छा से विभाजित कराने का अधिकार होता है।	संयुक्त हिन्दू परिवार में एक ही पूर्वज के वंशज सम्मिलित होते हैं। ये सदस्यों के परस्पर सपिण्डता पर आधारित होते हैं।
सहदायिकी एक सकुचित संस्था है जिसके वही सउस्य होते हैं जो सहदायिकी अथवा संयुक्त संपत्ति में जन्म से अधिकार प्राप्त करते हैं।	संयुक्त हिन्दू परिवार एक समान पूर्वजों से उत्पन्न वंशजों उनकी पत्नियों एवं अविवाहित पुत्रियों को शामिल करता है।

साझीदारी और संयुक्त परिवार के व्यापारिक संघ में अंतर

साझीदारी	संयुक्त परिवार के व्यापारिक संघ
साझीदारी फर्म साझीदार की मृत्यु पर विघटित हो जाती है।	संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म किसी भी सदस्य की मृत्यु हो जाने पर विघटित नहीं होती है।
साझीदारी की अवधि निर्विचार होती है। अतः इसे निर्विचार अवधि से पूर्व भेग नहीं किया जा सकता है किन्तु कुछ अवस्थाओं में यह भेग की जा सकती है।	हिन्दू संयुक्त परिवार के फर्म का कोई भी सदस्य कभी भी व्यवसाय से पृथक् हो सकता है।
साझीदारी में प्रत्येक साझीदार को संविदा के आधार र निर्विचार अ”ना की प्राप्ति होती है।	संयुक्त परिवार के व्यवसाय के संबंध में सदस्यों में हकों की सामूकिता होने से सहदायिक का अ”ना प्राप्त नहीं होता है।
साझीदारी में साझीदार का एक दूसरे साझीदार से अभिकर्ता के रूप में संबंध होता है और उन्हें एक साझीदार अपने वचन उवं कृत्यों से बाध्य कर सकता है।	संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय में परिवार के सदस्यों में अभिकर्ता का संबंध नहीं होता है।
साझीदारी में साझीदार फर्म से निकला हुआ पुराना साझीदार अपने	संयुक्त हिन्दू परिवार के व्यवसाय से पृथक् होने वाला सदस्य लाभ

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

लाभ की माँग कर सकता है।	की माँ नहीं कर सकता है।
साझीदारीमें साझीदार के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र जन्म से किसी हिस्से के साझीदार नहीं बनते हैं।	संयुक्त परिवार में पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र जन्म से ही दसके व्यवसाय के साझीदार हो जाते हैं।
साझीदारी में साझीदार फर्म के ओर व्यक्तिगत ऋण के लिए समान रूप से उत्तरदासी होते हैं।	संयुक्त परिवार में इस प्रकार की जिम्मेदारी नहीं होती है।

सहभागीदारों के अधिकार – संयुक्त परिवार के प्रत्येक सहदायिक को अग्रलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं –

1. संयुक्त कब्जे और उपभोग का अधिकार
2. हकों का स्वामित्व
3. बैंबारे कराने का अधिकार
4. हिसाब किताग माँगने अधिकार
5. अनधिकृत कार्य रोकने का अधिकार
6. अन्य संकामण का अधिकार
7. सामुदायिक रस्ते और बचत का अधिकार
8. भरण पोषण और आवास का अधिकार
9. समान कब्जे तब उपभोग का अधिकार
10. उत्तरजीवितव का अधिकार
11. सहसाझीदार का जन्म से अधिकार
12. विवाह अधिकार

अविभाज्य एवं संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्त्ता – परिवार के सभी अवयस्क सदस्यों तथा स्त्रियों के हितों को संरक्षण प्रदान करने एवं भरण पोषण करेन के लिए कर्त्ता या प्रबंधक की आवश्यकता होती है। संयुक्त हिन्दू परिवार में ऐसे प्रबंधक को कर्त्ता कहा जाता है। परिवार के कार्यों की देखरेख करन तथा सभी कार्यों का प्रबंध करेन के लिए ही प्रबंधक होता है।

दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि अविभाज्य परिवार की व्यवस्था तथा देखभाल और परिवार का संचालन जिस व्यक्ति द्वारा किया जाता है, वह कर्त्ता कहलाता है। कर्त्ता संयुक्त परिवार का प्रधान माना जाता है और उसका स्थान परिवार में सर्वोपरि होता है। सामान्य रूप से संयुक्त हिन्दू परिवार का कर्त्ता पिता के रूप में होता है।

कर्त्ता के अधिकार – संयुक्त हिन्दू परिवार के कर्त्ता या प्रबंधक को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है –

1. आय व्यय का अधिकार
2. ऋण लेने का अधिकार
3. संविदा करेन का अधिकार
4. अन्य संकामण का अधिकार
5. निर्देश देने का अधिकार
6. समझौता करेन का अधिकार
7. उन्मोचन देने का अधिकार
8. ऋण की अभिस्वीकृति का अधिकार
9. वाद में प्रतिनिधित्व का अधिकार
10. संपत्ति हस्तांतरण का अधिकार

कर्त्ता के दायित्व एवं कर्त्तव्य – संयुक्त परिवार के कर्त्ता के परिवार के उचित कार्यों के संबंध में निम्नलिखित दायित्व एवं कर्त्तव्य होते हैं –

1. हिसाब देने का कर्त्तव्य
2. संपत्ति की सुरक्षा का दायित्व
3. ऋण वसूल करने का कर्त्तव्य
4. उचित व्यय करेन का कर्त्तव्य
5. नया व्यापार न करने का कर्त्तव्य
6. अन्य संकामण न करने का कर्त्तव्य

मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत विभाजन – मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत विभाजन का सामान्य अर्थ “पारिवारिक संपत्ति का परिवार के समस्त सदस्यों का निर्दिष्ट अन्यों में समायोजन करना होता है। विभाजन का दूसरा अर्थ होता है संयुक्त प्रास्थिति का पृथक्करण और उसके उपरिणाम।

मिताक्षरा विधि के अनुसार – संयुक्त परिवार की संपत्ति में सहदायिकी के चल हितों का निर्दिष्ट भागों के स्फुटन विभाजन कहलता है।

विभाजन के आवश्यक तत्व – विभाजन के लिए निम्नलिखित तत्वों की आवश्यकता है –

1. विभाजन के लिए यह आवश्यक है कि संयुक्त परिवार का कोई सदस्य विभाजन के लिए स्पष्ट और निर्दिष्ट इच्छा व्यक्त करें।
2. विभाजन का स्पष्ट आवश्यकतापरिवार के अन्य सदस्यों को अवगत कराया जाना महत्वपूर्ण है।
3. विभाजन संयुक्त स्थिति का विघटन होता है।
4. पृथक्करण की भावना का प्रदर्शन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित हो सकता है।

संयुक्त परिवार की संपत्ति के विभाजन के तरीके –

1. पृथक होने की घोषणा द्वारा विभाजन
2. सूचना द्वारा विभाजन
3. मुकदमे द्वारा विभाजन
4. करार द्वारा विभाजन

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

5. विवाचन द्वारा विभाजन
6. वि"ष विवाह द्वारा विभाजन
7. धर्म परिवर्तन द्वारा विभाजन
8. पिता द्वारा विभाजन
9. वसीयत द्वारा विभाजन

बँटवारे में विभाजन योग्य संपत्ति – सामान्यतः सहदायिकी संपत्ति कर ही विभाजन हो सकता है। किसी भी व्यक्ति की पृथक् या स्वअर्जित संपत्ति का विभाजन हो सकता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि बँटवारा उसी संपत्ति को हो सकता है जो परिवार के सदस्यों द्वारा बँटवारे के पूर्व अविभक्त संपत्ति केरूप में धारण की जाती है।

निम्नलिखित संपत्तियाँ गिराजन के योग्य नहीं होती अर्थात् निम्नलिखित संपत्तियों को छोड़कर अन्य संपत्तियों का विभाजन हो सकता है –

1. वह संपत्ति जो व्यवहार में अथवा विधि नियम के अन्तर्गत अथवा किसी अनुदान की शर्त के अन्तर्गत किसी एक सदस्य सक नयागत होती है।
2. स्वभाव से अभिभज्य सम्पत्तियाँ जैसे जला"य, सीढ़ियाँ, मार्ग आदि
3. किसी सउस्य की स्वअर्जित पृथक् संपत्ति
4. परिवार के देवताओं की मूर्तियाँ की मूर्तियों तथा पूजायोग्य पुरातन वस्तुएँ
5. कुएँ और कुओँ से पानी लेने का अधिकार
6. किसी मठ की अध्यक्षता
7. उपासना तथा बलि के स्थान
8. धर्मदाय में पूर्ण समर्पित
9. सहदायिकों की पत्नियों को दिये गए गहने आभूषण और वे"भूषा
10. सवार, घोड़े, गाय, बैल आदि
11. राज्य
12. सार्वजनिक मार्ग, उद्यान, भवन आदि
13. पका पकाया भोजन, दासियाँ, पन्नियो, देव और इष्ट

विभाजन से पूर्व की व्यवस्थाएँ – संयुक्त परिवार की संपत्ति का विभाजन करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखना चाहिए –

1. संयुक्त परिवार के हेतु लिये गये ऋण जिनकी अदायगी संयुक्त परिवार की संपत्ति से होती है।
2. पिता के व्यवितरण ऋण जो अवैध अथवा अनैतिक कार्य हेतु न लिये गये हो।
3. आश्रित स्त्रियों तथा ऐसे सउस्यों की निर्वाह वृत्ति, जो कार्य करने की क्षमत खो चुके हो।
4. अविवाहित पुत्रियों के विवाह के खर्च। यह पुत्रियाँ अंतिम पुरुष पूर्वाधिकारी की हानी चाहिए।
5. अंतिम संपत्ति धारक पुरुष की विधवा तथा माता के दाह संस्कार का खर्च

दिवाकर प्रसाद दुबे और अन्य बनाम प्रभाकर प्रसाद दुबे में कहा गया कि भवन के सहभागीदारों में हुए विभाजन में उस भवन में स्थित इंजन का विभाजन भी हुआ है इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

विभाजन के लिए दावा करने वाले व्यक्ति –

1. पुत्र तथा पोत्र
2. उत्तरजात पुत्र
3. अवैध पुत्र
4. विधवा
5. दत्तक पुत्र
6. अवयस्क सहभागीदार
7. पत्नी

हिस्से के वितरण के नियम – विभाजन के संबंध में सामान्य नियम के अनुसार विभाजन पृथक्करण के दिन की अवस्था के अनुसार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि विभाजन को संयुक्त परिवार की अवस्था के अनुसार होना आव"यक है।

संपत्ति के विभाजन में हिस्सों के वितरण निम्नलिखित नियमों के अनुसार प्रा"सित होते हैं –

1. पिता और पुत्र के बँब्बारे के समय प्रत्येक पुत्र अपने पिता के बराबर हिस्सा करेगा
2. जब संयुक्त परिवार में भाई होते हैं तो प्रत्येक भाई बराबर का हिस्सा प्राप्त करेगा।
3. शाखाओं में विभाजन के समय अन्य शाखाओं के साथ प्रत्येक द्वाखा नितृपरक हिस्सा लेगी किन्तु उसी शाखा में हिस्सा विभाजन के समय उसकी पुरुष संतान को प्राप्त होगा।
4. सहदायिक की मृत्यु के प"चात् उसका हिस्सा विभाजन के समय उसकी पुरुष संतान को प्राप्त होगा। शर्त यह है कि प्रत्येक पुरुष संतान सहदायिकी के नियमानुसार एक पूर्वज से चार पीढ़ी के अन्तर्गत होना आव"यक है।

आंशिक बँटवारा – संयुक्त हिन्दू परिवार को आंशिक बँटवारा संपत्ति का या अलग होने वाले व्यक्ति का हो सकता है

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

आंगीक बैब्वारे का तात्पर्य होता है जब कुछ सदस्य परिवार से पृथक् हो जाते हैं और शेष संयुक्त रहते हैं तो उसकों सउस्यों का आंगीक बैटवारा कहा जाता है।

1. संपत्ति का आंगीक विभाजन – संपत्ति के आंगीक विभाजने से तात्पर्य होता है जब संपत्ति के एक अंगी का विभाजन हो जाता है और कुछ हिस्सा संयुक्त होता है। संयुक्त परिवार के सदस्य परिवार के सदस्य को यह अधिकार होता है कि वह संपत्ति के एक भाग का विभाजन करवा ले और बाकी संयुक्त रहे।
2. व्यक्तियों कस आंगीक बैटवारा – संयुक्त परिवार के किसी भी सदस्य को परिवार से पृथक् होने का अधिकार रहता है। वह कभी भी संयुक्त परिवार से अपना हिस्सा निर्द्धारित करवाकर अलग हो सकता है।

पुनः बैटवारा – सामान्य रूप से विभाजन का यह सिद्धान्त है कि एक बार विभाजन हो जाने के पश्चात् पुनः विभाजन नहीं कराया जा सकता है।

मनु के अनुसार एक बार यदि बैब्वारा हो जाता है एक बार कुमार कन्या का विवाह हो जाता है एक बार यदि कोई व्यक्ति कहता है मैं देता हूँ तो ये तीनों चीजें आदमी के एक बार कहीं देने पर बदलती नहीं।

सामान्य नियम के अपवाद – सामान्य नियम सह है के एक बार यदि विभाजन हो जाता है तो पुनः विभाजन नहीं कराया जा सकता है किन्तु निम्नलिखित परिस्थितियों में अपवादस्वरूप पुनः विभाजन कराया जा सकता है –

1. यदि विभाजन के समय पुत्र माता के गर्भ में है और वह जीवितपैदा होता है तो वह फिरसे विभाजन करा सकता है। उसके लिए विभाजन में कोई अंगी सुरक्षित नहीं रखा गया हो तभी ऐसा पुनः विभाजन किया जा सकता है।
2. यदि लड़का विभाजनके बाद गर्भ में आता है और पैदा होता है और यदि पिता ने अपने हिस्सा ले लिया है तो विभाजन के बाद पैदा तथा गर्भ में आया हुआ लड़का पिता की समस्त पृथक् संपत्ति का हिस्सेदासर होगा और उससे अन्य लड़कों को कोई संबंध नहीं होगा।
3. ऐसा कोई सहभागीदार जो किसी निर्याग्यता के कारण अपने हिस्से को प्राप्त करने से वंचित हो गया हो, उसकी निर्याग्यता दूर हो जाने पर फिर से विभाजन कराने का अधिकार रखता है।
4. यदि किसी सहभागीदार ने अनुचित तरीके से अपनी लाभदायक स्थिति विभाजन से पाप्त का ली है तो फिर से विभाजन कराया जा सकता है। अतः ठीक प्रकार से बैटवारा न होने पर पुनः बैटवारा कराया जा सकता है।
5. यदि विभाजन अवयस्क सहभागीदारों के हितों के प्रतिकूल है तो अवयस्क के अनुरोध पर पुनः विभाजन कराया जा सकता है।

बैटवारे का प्रभाव – बैटवारा होने के निम्नलिखित प्रभाव होते हैं –

1. जब बैटवारा सामान्य होता है तो परिवार की एकता समाप्त हो जाती है। जब आंगीक बैटवारा होता है जो अन्य सदस्य सुयुक्त ही रहते हैं और पृथक् व्यक्ति अपनी संयुक्त स्थिति को छो देता है।
2. इसी प्रकार धर्म त्याग से जब बैटवारा होता है तो धर्म त्याग करने वाला व्यक्ति पृथक् हो जाता है और उसके पृथक् संयुक्त रूप में रहता है। जब कोई व्यक्ति अपना विवाह विवाह अधिनियम के अन्तर्गत करता है तो वह परिवार से पृथक् कर दिया जाता है और संपूर्ण परिवार संयुक्त रूप से रहता है।
3. बैटवारा होने से परिवार की संपत्ति की स्थिति में परिवर्तन आ जाता है पृथक् सदस्यों में संयुक्त आभोग के स्थान पर सह अभोग हो जाता है।
4. बैटवारा के अन्य संबंध समाप्त नहीं होते हैं जैसे दाय प्राप्त करने का अधिकार आदि।

दायीाग विधि में बैटवारा – दायभाग विधि के अन्तर्गत विभाजन संयुक्त कब्जे के पृथक्करण अर्थात् सहभागीदारों या सहदायिकों के अंगों के पृथक्करण से संबंधित होता है।

दायभाग विधि में संयुक्त परिवार की संपत्ति में प्रत्येक सहभागीदार का हिस्सा निर्द्धारित रहता है तथा वे सह आभोगी के रूप में रहते हैं। अतः वे अपने भाग के पूर्ण स्वामी होते हैं। दायभाग विधि के अन्तर्गत विभाजन से तात्पर्य होता है सहभागीदारों के अंगों का अविभाजित संपत्ति में से पृथक् करके उसे उनके कब्जे में देना।

दायभाग विधि के अनुसार सहभागीदारी के प्रत्येक वयस्क सहदायिक सदस्य कसे यह अधिकार होता है कि वह संपत्ति का विभाजन करवा ले। चाहे वे सदस्य स्त्री हो या पुरुष, संयुक्त परिवार की संपत्ति में से विभाजन करवा सकते हैं।

दायीाग विधि के अनुसार पिता की संपत्ति में चाहे वह पैतृक हो अथवा स्वअर्जित पूर्ण स्वामी होने से उसके जीवनकाल में पुत्रों, पौत्रों अथवा प्राप्तौत्र का उसमें कोई हितनहीं होता है। इसलिए किसी व्यक्ति के पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र उसके विरुद्ध विभाजन नहीं करा सकते हैं। विभाजन केवल एक शाखा और दूसरी शाखा के बीच अथवा भाइयों के बीच अथवा अंगी प्राप्त करने के अधिकारी अन्य व्यक्तियों के बीच हो सकता है।

दुर्गानाम बनाम चिन्तामधि में कहा गया है कि दीाग के अन्तर्गत प्रत्येक वयस्क सहदायिक चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष विभाजन की माँ कर सकता है।

जगमोहन बनाम शारदामयी में यह निरूपित किया गया कि माता अपने स्वाधिकार तथा अपने मृतक पुत्रों की वारिस दोनों ही स्थिति में संपत्ति प्राप्त कर सकती है। किन्तु बिना पुत्रों की सातेली माता उसके सातेले पुखें के मध्य विभाजन होने पर किसी अंगी की अधिकारिणी नहीं होती है।

अंशों का निर्धारण – दायभाग विधि में बैटवारे के समय सदस्यों के हिस्से निर्धारित करने के निम्नलिखित सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं।

1. जब विभाजन भाइयों के बीच होता है तो प्रत्येक बराबर बराबर हिस्सा प्राप्त होगा।
2. किसी मृतक सहभागीदार का हिस्सा उसके उत्तराधिकारी को प्रदान किया जायेगा।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

3. प्रत्येक शाखा शाखानुसार हिस्सा प्राप्त करकते हैं। सक ही शाखा के विभिन्न सउस्य प्रति व्यक्त के हिसाब से अपना हिस्सा प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।
4. पिता से पृथक् रहने वाला पुत्र पिता के साथ समिलित रहने वाले पुत्रों के समान ही पिता की संपत्ति में अँग प्राप्त करता है।

मिताक्षरा और दायभाग विधि के विभाजन में अंतर –

मिताक्षरा	दायभाग में विभाजन
मिताक्षरा के अनुसार विभाजन सहदायिकों के अँगों के निर्धारण तथा अभीनिंचत करेन में होता है।	दायभाग के अन्तर्गत अँगों के पहले से ही निर्धारित होने के कारण विभाजन उपत्ति के वार्सतविक विभाजन में है
मिताक्षरा विधि में विभाजन के लिए दावा प्रस्तुतु करना ही पर्याप्त होता है।	दायभाग विधि के अन्तर्गत दावा प्रस्तुतु करेन के साथ ही डिकी प्राप्त होने पर ही विभाजन पूर्ण होता है।
मिताक्षरा में तीन पीढ़ी तक के पूर्वजों के पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र विभाजन की मँग कर सकते हैं।	दायभाग विधि के अन्तर्गत पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र को विभाजन की मँग करेन का अधिकार नहीं होता।
मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत सौतेली माता बिना पुत्र के ही अँग की अधिकारिणी होती है।	दायभाग विधि में सौतेली माता वि बिना पुच के किसी भी अंरु के प्राप्त करेन का अधिकार नहीं होता है।
मिताक्षरा में पत्नी स्वयं विभाजन का दावा नहीं कर सकती है। किन्तु पति पुत्रों में विभाजन होने पर अँग की अधिकारिणी होती है।	दायभाग में पत्नी पति और पुत्रों के मध्य विभाजन के पचात् अँग की अधिकारिणी नहीं होती है।
मिताक्षरा मिताक्षरा विधि में प्रति संहरित वक्तव्य द्वारा विभाजन करने की इच्छा का प्रदर्शन करना ही पर्याप्त होता है।	दायभाग दायभाग विधि के अन्तर्गत जब तक माल और सीमाओं में संपत्ति का विभाजन नहीं होता, विभाजन नहीं समझा जाता है।

स्त्रीधन

स्त्रीधन – हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के पारित होने से पूर्व किसी स्त्री के पास निम्नलिखित दो प्रकार की सम्पत्ति हो सकती है –

1. वह सम्पत्ति जिस पर स्त्री का पूर्ण स्वामित्व है, तथा
2. वह सम्पत्ति जिस पर स्त्री का सीमित स्वामित्व होता है।

उपरोक्त दोनों प्रकार की सम्पत्तियों में पहले प्रकार की समित्त स्त्रीधन तथा दमसरे प्रकार की सम्पत्ति नारी समपदा कहलाती है।

स्त्रीधन का शादिक अर्थ होता है वह सम्पत्ति जो स्त्री की होती है।

राजमा बनाम बरदाराजनुलू चेटटी, A.I.R. 1957, Madras 198 के अनुसार, हिन्दू स्त्री को विवाह के पहले और विवाह के समय प्राप्त हुए उपहारों को स्त्रीधन कहा जाता है। अनुराग और उपहार से दिया जाने वाला धन भी स्त्रीधन कहलाता है। संबंधीयों से मिलने वाला धन भी स्त्रीध नहीं कहलाता है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

स्त्रीधन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—

(1) सृतियों के अनुसार स्त्रीधन—मनु के अनुसार निम्नलिखित 6 प्रकार की सम्पत्तियों को स्त्रीधन कहा जाता है—

1. अध्यग्नि, वैवाहिक अग्नि के समक्ष मिला उपहार;
2. अध्यग्नहनिका या वधू के जाने के समय दिया गया उपहार;
3. प्रीतिदत्त, अनुरागवाँ' सास और श्वसुर द्वारा दिया गया उपहार और पदवन्दनिका या विवाह के बाद श्रेष्ठजनों के चरण—स्पौं में मिला उपहार;
4. पिता द्वारा दिया गया उपहार;
5. माँ द्वारा दिया गया उपहार;
6. भाई द्वारा दिया गया उपहार।

इस सूची में 'विष्णु' ने 4 उपहार और भी जोड़ दिये हैं—

7. अन्य पत्नी लाते समय पति द्वारा प्रथम पत्नी को दिया गया उपहार आधिवेदनिका।
 8. विवाह होने के बाद पति पैतृक सम्बन्धियों से मिला उपहार।
 9. कन्या को विवाह में देने का शुल्क।
 10. पुत्रों एवं सम्बन्धियों से मिला उपहार।
- देवल न दो उपहार और भी बताये हैं जो स्त्रीधन होते हैं—
11. भोजन और वस्त्र।
 12. पति द्वारा दिय गया आभूषण।

याज्ञवल्क्य के अनुसार, "पिता, माता, पति, भाई वैवाहिक अग्नि के समक्ष या अन्य पत्नी लाते समय, आदि जो उपहार औरत को मिलता है वह उसका स्त्रीधन है।"

(2) मिताक्षरा के अनुसार स्त्रीधन— मिताक्षरा के अनुसार स्त्रीधन निम्नलिखित प्रकार का होता है—

1. दाय से मिली सम्पत्ति;
2. खरीदकर ली गई सम्पत्ति;
3. विभाजन द्वारा प्राप्त की हुई सम्पत्ति;
4. प्रतिकूल कब्जे से प्राप्त हुई सम्पत्ति;
5. अन्य प्रकार से प्राप्त सम्पत्ति जो कि स्त्री के कब्जे में है।

भगवानदीन बनाम मैनावाई 11, M.I A. 107 में कहा गया कि जो सम्पत्ति विधवा स्त्री अपने पति की सम्पत्ति से दाय में प्राप्त करती है वह स्त्रीधन सम्पत्ति नहीं होगी। पति के परिवार में दाय को छोड़कर स्त्री जो सम्पत्ति दाय में प्राप्त करती है, स्त्रीधन होती है।

(3) भाष्यकारों के अनुसार स्त्रीधन— भाष्यकारों के अनुसार मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत निम्नलिखित को स्त्रीधन कहा जाता है—

1. पिता, माता, पति और भाई द्वारा दिया गया धन
2. अध्याग्नि
3. आधिवेदनिका
4. बन्धकी द्वारा प्राप्त धन
5. शुल्क
6. अन्वाधेय
7. दाय, विक्रय और विभाजन से प्राप्त धन
8. अभिग्रहण व अन्य साधनों से प्राप्त धन स्त्रीधन कहलाता है।

(4) न्यायिक निर्णयों के अनुसार स्त्रीधन— अनेक न्यायिक निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जो स्त्रियाँ मृतक व्यक्ति के परिवार में विवाह के द्वारा आई हैं, उन्हें छोड़कर अन्य स्त्रियों की पुरुष दाय में प्राप्त सम्पत्ति को स्त्रीधन कहा जाता है।

शाम कंवर बनाम वाह कुंवर, 29 I.A. 132

निम्नलिखित धन स्त्रीधन नहीं है—

1. स्त्री द्वारा पति की दाय रूप में प्राप्त सम्पत्ति
2. पूत्री द्वारा माता से प्राप्त सम्पत्ति
3. किसी भी स्त्री से उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति
4. विभाजन के प"चात् विधवा के हक में आने वाला अ"।
5. पति द्वारा पत्नी को दी गई अथवा उत्तरदान की गई सम्पत्ति
6. स्त्री के वस्त्र और आभूषण

स्त्रीधन के प्रकार और लक्षण— स्त्रीधन स्त्री की ऐसी सम्पत्ति होती है जिस पर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है तथा जो उसे विवाह के समय पिता, माता, भाई तथा अन्य सभी सम्बन्धियों द्वारा प्रीतिवाँ तथा उपहारस्वरूप प्राप्त होती है। यह धन वधू को पतिगृह जाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए दिया जाता था।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

निम्नलिखित धन स्त्रीधन हो सकते हैं—

1. अध्यग्नि— विवाह के समय अग्नि साक्षी के समय दिये गये उपहार होते हैं।
2. अध्यवाहिका— पिता के घर से पति के घर लाई जाती हुई कन्या को दिया गया धन अध्यवाहिका कहलाता है।
3. पद वन्दनिका— वधू के द्वारा बड़े का अभिवादन करने के अवसर पर प्राप्त सम्पत्ति पद वन्दनिका कहलाती है।
4. अन्वधेयक— विवाह के बाद प्रति के परिवार से प्राप्त उपहार अन्वधेयक होता है।
5. अधिवेदनिका— दूसरी वधू लाने पर प्रथम वधू को दिया गया उपहार अधिवेदनिका कहलाता है।
6. शुल्क—विवाह के लिए प्राप्त धन शुल्क स्त्रीधन कहलाता है।
7. प्रीतिदत्त— सास-ससुर के स्नेहवौं दिए गए उपहार प्रीतिदत्त होते हैं।
8. पतिदत्त— पति के द्वारा दिए गए उपहार पतिदत्त स्त्रीधन कहलाता है।
9. बन्धुदत्त— पिता तथा माता के सम्बंधियों द्वारा दिए गये उपहार बन्धुदत्त कहलाते हैं।
10. वृत्ति— भरण पोषण के लिए दिया गया धन या उस धन से खरीदी गई सम्पत्ति वृत्ति होती है।
11. सौदायिका— विवाहिता अथवा अविवाहिता कन्या, पति अथवा पिता से, पति या पिता के घर से प्राप्त करने वाला धन सौदायिका स्त्रीधन कहलाता है।
12. बचत— बचत होने वाला धन बचत स्त्रीधन होता है।
13. फैल्पकला— क्वारेपन अथवा वैधव्यकाल में नारी द्वारा फैल्पकला अथवा शारीरिक श्रम से प्राप्त सम्पत्ति स्त्रीधन होता है।
14. योतक— विवाह के समय जब वर-वधू एक ही स्थान पर खड़े होते हैं तो उस समय दिया गया उपहार योतक स्त्रीधन कहलाता है।

किसी स्त्री के उसके स्त्रीधन सम्पत्ति पर क्या अधिकार होते हैं?

स्त्रीधन के ऊपर स्त्री के अधिकार— स्त्रीधन के ऊपर स्त्री के निम्नलिखित अधिकार होते हैं—

1. अविवाहितावस्था के अधिकार— कोई भी स्त्री जो अविवाहित है तथा वयस्क है अपनी सम्पत्ति को किसी को भी हस्तान्तरण कर सकती है, परन्तु यदि सह अवयस्क है तो वह अपनी सम्पत्ति का हस्तान्तरण नहीं कर सकती है।
2. विवाहितावस्था के अधिकार— विवाहितावस्था में स्त्री अपना सौदायिक धन और पिता व भाई द्वारा प्राप्त धन को पति की बिना अनुमति के भी निवर्तन कर सकती थी। ऐसा धन जो स्त्री पति से प्राप्त करती थी उसे वह बिना पति की अनुमति के निवर्तन नहीं कर सकती थी। जहाँ कि पति और पत्नी साथ रहते हैं वहाँ असौदायिका धन के निवर्तन के लिए पति की अनुमति आवश्यक नहीं होती है। पति का पत्नी के स्त्रीधन पर कोई अधिकार नहीं होता है किन्तु आपत्तिकाल में वह स्त्री की सहमति के बिना भी उसके धन स्त्रीधन का उपयोग कर सकता है।
3. विधवा अवस्था में अधिकार— विधवा अवस्था में एक स्त्री सम्पत्ति के निवर्तन का पूर्ण और अबाधित अधिकार होता है। वह अपनी इच्छा से सम्पत्ति का अन्य संक्रामण कर सकती है।

स्त्रीधन के उत्तराधिकार सम्बन्धी नियम— विवाहित नारी स्त्रीधन के उत्तराधिकार के प्रयोजन हेतु स्त्रीधन को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. शुल्क
2. टचल सम्पत्ति

शुल्क का न्यागमन— शुल्क का न्यागमन निम्न रीति से होता है—

1. सगा—भाता,
2. माता, इसके अभाव में,
3. पिता,
4. पिता के दायाद, उसके सपिण्ड समानोदक तथा बन्धुगण।

अन्य स्त्रीधन— शुल्क के अतिरिक्त अन्य प्रकार का स्त्रीधन निम्नलिखित क्रम में न्यागत होता है—

1. अविवाहित पुत्री,
2. विवाहित पुत्री जो साधनहीन है,
3. विवाहित पुत्री जो साधन—सम्पन्न है,
4. पुत्री की पुत्री,
5. पुत्री का पुत्र,
6. पुत्र,
7. पुत्र का पुत्र,

यदि इन उपरोक्त दायादों में कोई जीवित नहीं है और नारी का विवाह मान्य रीतियों में से किसी के अन्तर्गत हुआ था, तो वह निम्नलिखित क्रम में न्यागता होगा—

8. पति,
9. पति के दायाद,
10. नारी के स्वयं के रक्त सम्बन्धी,

यदि नारी का विवाह अमान्य रीति से हुआ है तो यह क्रम इस प्रकार होगा—

1. माता,
2. पिता,
3. पिता के दायाद

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

4. पति के दायाद

अविवाहित स्त्री के स्त्रीधन का न्यागमन— एक अविवाहित स्त्री के स्त्रीधन का न्यागमन निम्नलिखित क्रम से होता है—

1. सगा भाई 2. माता 3. पिता, 4. पिता के दायाद, 5. माता के दायाद।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत उत्तराधिकार— हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956, के अन्तर्गत स्त्रीधन से सम्बन्धित उत्तराधिकार के सम्बन्ध में अधिनियम की धारा 14, 15 तथा 16 उपबन्धित है।

1. धारा 14 के अनुसार— धारा 14 में कहा गया कि कोई भी सम्पत्ति जो अधिनियम के प्रारम्भ होने के समय स्त्री के कब्जे में रही है चाहे वह अधिनियम के पूर्व या बाद में प्राप्त की गयी हो वह स्त्री की पूर्ण सम्पत्ति हो जाती है।"
2. धारा 15 के अनुसार—धारा 15 में यह विहित किया गया है कि "किसी हिन्दू स्त्री की सम्पत्ति निर्वसीयत मरने पर धारा 16 में निहित नियमों के अनुसार न्यागत होगी—

 - (1) अ प्रथमतः पुत्रों तथा पुत्रियों एवं पति को किसी पूर्वमृत पुत्र या पुत्री की सन्तान सहित।
ब द्वितीयतः पति के दायादों को।
स तृतीयतः माता के दायादों को।
द चतुर्थतः पिता के दायादों को।
य अन्ततः माता के वारिसों को।
 - (2) उपधारा 1 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी—

(अ) हिन्दू स्त्री को अपने पिता या माता से दाय में प्राप्त कोई सम्पत्ति मृतक के किसी पूर्व मृत पुत्र या पुत्री के सन्तान सहित किसी पुत्र या पुत्री के अभाव में उपधारा 1 में निर्दिष्ट अन्य दायादों को उसमें उल्लिखित क्रम से न्यागत न होकर पिता के दायादों को न्यागत होगी, और

(ब) अपने पति या श्वसुर से दाय में प्राप्त कोई सम्पत्ति मृतक के पूर्वमृत पुत्र या पुत्री की सन्तान सहित किसी पुत्र की पुत्री के अभाव में उपधारा 1 में निर्दिष्ट दायादों को उसमें उल्लिखित क्रम से न्यागत न होकर पति के दायादों की न्यागत होगी।"

दायभाग विधि के अन्तर्गत स्त्रीधन— दायभाग विधि के अन्तर्गत किसी स्त्री का स्त्रीधन वह सम्पत्ति है जिसको वह अपनी इच्छानुसार हस्तान्तरण करने का अधिकार रखती है।

जीमूतवाहन के अनुसार— "स्त्रीधन वह सम्पत्ति है जिसे एक पत्नी अपनी स्वेच्छा से अपने पति की अनुमति के बिना ही अन्य संक्रामण कर सकती है अथात् वह उसका दान कर सकती है या विक्रय कर सकती है।"

दायभाग विधि के अन्तर्गत निम्नलिखित सम्पत्तियों को स्त्रीधन नहीं माना गया है—

1. वह सम्पत्ति जिसे स्त्री ने दाय में प्राप्त किया है।
2. वह सम्पत्ति जिसे विभाजन में प्राप्त किया है।
3. ऐसे उपहार जिसे स्त्री ने विवह के समय अजनबियों से प्राप्त किये हैं।
4. वह सम्पत्ति जिसे स्त्री द्वारा अपनी कला से अर्जित किया गया है। दायभाग विधि के अनुसार पत्नी उपहार में प्राप्त सम्पत्तियों को हस्तान्तरण कर सकती है जिस पर कि उसका 'स्त्रीधन' के रूप में अधिकार होता है। स्त्री के अधिकार में रहने वाला स्त्रीधन पति की मृत्यु के प"चात् भी स्त्री द्वारा निर्वाध रूप से प्रयोग किया जाता है। दायभाग विधि के अन्तर्गत

स्त्रीधन निम्नलिखित चार प्रकार का होता है—

(1) शुल्क— शुल्क वह धन होता है जो स्त्री को भेंट के रूप में अपने पति के घर जाने के लिए प्रेरित करने के लिए प्रदान किया जाता है।

(2) योतुक— योतुक वह धन होता है जो स्त्री को उसके विवाह संस्कार अथवा द्विरागमन संस्कार के समय प्राप्त होता है।

(3) अन्वाधेयक— विवाह के प"चात् स्त्री को पिता द्वारा प्रदान की गई भेंट अन्वाधेयक कहलाती है।

अयौतुक—अयौतुक स्त्रीधन के अन्तर्गत स्त्री को पति द्वारा दिया गया प्रत्येक प्रकार का दान होता है। स्त्री द्वारा अर्जित की गई सम्पत्ति तथा अजनबी व्यक्तियों द्वारा प्रदान किया गया दान और शुल्क भी अयौतुक स्त्रीधन कहलाता है।

प्रतिभारानी बनाम सूरजकुमार, A.I.R. 1985 S.C. 628 के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पत्नी स्त्रीधन की पूर्ण स्वामिनी होती है; पति और अन्य व्यक्ति उसे प्राप्त करने के अधिकारी नहीं होते हैं। यदि स्त्रीधन का दुर्विनियोजन पति द्वारा किया जाता है तो उसके विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही की जा सकती हैं पति स्त्रीधन को लौटाने का उत्तरदायी है यदि वह उसे प्राप्त करता है।

नारी सम्पदा अथवा विधवा सम्पदा की परिभाषा— समान्य रूप से स्त्रियों की दो प्रकार की सम्पत्ति हो सकती हैं—

1. जिस सम्पत्ति पर स्त्री को अन्य सक्रामण का पूर्ण अधिकार होता है उसे स्त्रीधन कहा जाता है, तथा
2. जिस सम्पत्ति पर स्त्री का सीमित अधिकार होता है, वह नारी सम्पदा या विधवा सम्पदा या सीमित सम्पदा कहलाती है।

नारी सम्पदा वह सम्पदा होती है जिसे स्त्री—

1. पुरुषों से दाय में प्राप्त करती है, तथा
2. स्त्रियों से दाय में प्राप्त करती है, अथवा
3. विभाजन के समय प्राप्त करती है।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

नारी सम्पदा नारी के जीवनकाल में उसके उपभोग के लिए प्राप्त होती है। वह इस सम्पदा का हस्तान्तरण निर्धारित परिस्थितियों में कर सकती है। नारी की मृत्यु के प”चात् यह सम्पत्ति उसके दायादों को प्राप्त नहीं होती है किन्तु सम्पत्ति के दूसरे पूर्ण स्वामी को प्राप्त हो जाती है।

नारी सम्पदा के परिणाम— हिन्दू विधि के अन्तर्गत नारी सम्पदा के सम्बन्ध में अन्य महत्वपूर्ण बातों का उपबन्ध किया गया है। हिन्दू नारी को नारी सम्पदा के सम्बन्ध में निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं—

(1) नारी सम्पदा पति से दाय में प्राप्त सम्पदा होती थी, जिसे पर नारी को पूर्ण अधिकार होता है। वह उस सम्पत्ति को विक्रय, बन्धक और हस्तान्तरण कर सकती है—

(I) विधिक आव”यकता होने पर उत्तरभोगी के झगड़े का अन्त करने के लिए सम्पत्ति हस्तान्तरण किया जा सकता है।

(II) सम्पदा के लाभ के लिए,

(III) वाद के उत्तरभोगियों की सम्पत्ति से,

(IV) धार्मिक प्रयोजनों के लिए, तथा

(V) दान एवं अन्य कार्यों के लिए,

(VI) मृत पति के श्राद्ध तीर्थयात्रा, ऋणों की अदायगी, तालाब के लिए दान, मन्दिर निर्माण।

आध्यात्मिक लाभ के लिए भी सम्पदा को बन्धक, विक्रय या हस्तान्तरण किया जा सकता है।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में नारी सम्पदा— हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 14,15 तथा 16 के अन्तर्गत नारी सम्पदा की व्यवस्था की गई है। हिन्दू विधि में नारी को नारी सम्पदा का कब्जा लेने के लिए किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध दावा लाने का अधिकार प्राप्त होता है।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14 (1) के अनुसार

“हिन्दू नारी के कब्जे में कोई भी सम्पत्ति चाहे वह इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व या प”चात् अर्जित की गई हो, उसके द्वारा पूर्ण स्वामिनी के तौर पर, न कि सीमित स्वामिनी के तौर पर धारित की जायेगी।”

धारा 15 के अन्तर्गत कहा गया है कि स्त्री की समस्त सम्पत्ति के विषय में उत्तराधिकार का एक सामान्य नियम प्रतिपादित किया गया जबकि नारी सम्पदा स्त्री की मृत्यु के बाद पति के वारिसों के निगमित होती थी न कि स्त्री के वारिसों को। अब हिन्दू स्त्री के निर्वसीयत मरने पर, वह चाहे दायभाग शाखा की हो या मिताक्षरा शाखा की उसकी सम्पत्ति का न्यागमन धारा 15 व 16 के अनुसार होता है। सम्पत्ति का न्यागमन क्रम तथा वितरण धारा 16 अन्तर्गत होता है।

उत्तरभोगी— अन्तिम पूर्ण स्वामी का दायाद जो विधवा या अन्य सीमित दायाद की मृत्यु के बाद सम्पत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त करने का अधिकारी था यदि वह उस समय जीवित होता, उत्तरभोगी कहलाता है।

नारी सम्पदा स्त्री की मृत्यु के प”चात् उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्त नहीं होती है बल्कि उस व्यक्ति के उत्तराधिकारी को प्राप्त होती है जिससे स्त्री ने प्राप्त की है। इन्हें उत्तरभोगी कहा जाता है। उत्तरभोगी पुरुष या नारी हो सकते हैं।

उत्तरभोगी के प्रकार— उत्तरभोगी निम्नलिखित प्रकार के होते हैं—

(1) निकटस्थ उत्तरभोगी— विधवा, स्त्री की मृत्यु के प”चात् व्यक्ति तत्क्षण उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार रखता है, वह उपधारक अथवा निकटस्थ उत्तरभोगी कहलाता है।

(2) दूरस्थ उत्तरभोगी— वे उत्तरभोगी जो निकटस्थ उत्तरभोगी के बाद आते हैं।

उत्तरभोगी के हित की प्रकृति— उत्तरभोगी का हित नारी की मृत्यु के प”चात् दाय प्राप्त करने से होता है जब तक सीमित स्वामी जीवित रहता है, किसी अन्य व्यक्ति को उसमें कोई भी हित नहीं होता है। उत्तरभोगी का अधिकार संभावित उत्तराधिकार का हित होता है।

उत्तरभोगियों के अधिकार— सीमित स्वामी के जीवन-काल में उत्तरभोगियों को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं—

1. सम्पदा को नष्ट होने से बचाने के लिए व्यादौं का वाद लाने का अधिकार;
2. स्त्री के जीवनकाल में प्रतिनिधि के रूप में हस्तान्तरण को शून्य घोषित कराने के लिए वाद लाने का अधिकार;
3. स्त्री की मृत्यु के प”चात् या स्त्री सम्पदा के अन्य किसी कारण से समपहरण होने पर हस्तान्तरण को शून्य घोषित कराने और स्वाधीनता प्राप्त करने का वाद दायर करने का अधिकार।
4. इच्छापत्र के अनुदान का विरोध करने का अधिकार;
5. किसी अन्य सक्रामण की मान्यता के लिए वाद संस्थापित करने का अधिकार।

दान की परिभाशा— ‘दान’ किसी व्यक्ति द्वारा स्वेच्छा से किसी दूसरे व्यक्ति को प्रदान किया जाता है और दूसरे व्यक्ति द्वारा उस दान को स्वीकार किया जाता है।

दान के आव”यक तत्व— हिन्दू विधि के अन्तर्गत वैध दान के लिए निम्नलिखित आव”यक तत्व होते हैं—

1. दाता 2. आदाता 3. स्वेच्छा 4. दान में प्रतिफल न हो 5. दान की वस्तु 6. अन्तरण 7. स्वीकृति अन्य औपचारिकताएँ

न उत्पन्न हुए व्यक्ति के पक्ष में दान— हिन्दू विधि के अन्तर्गत विभिन्न न्यायिक निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि भी दान किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में संभव नहीं हो सकता, जो कि दान के वक्त अस्तित्व में ही नहीं आया हो।

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

टैगोर बनाम टैगोर, 9 B.L.R. 277 में कहा गया कि पूर्व हिन्दू विधि के अन्तर्गत दान किसी ऐसे व्यक्ति के पक्ष में नहीं किया जा सकता जो दान करने के दिन अस्तित्व में न आया हो।

किन्तु अब यह नियम हिन्दू हस्तान्तरण तथा उत्तरदान अधिनियम, 1914 तथा हिन्दू सम्पत्ति निवर्तन अधिनियम, 1961 द्वारा परिवर्तित कर दिया गया है। हिन्दू हस्तान्तरण तथा उत्तरदान मद्रास शहर अधिनियम, 1961 के अन्तर्गत अब बिना उत्पन्न हुए बच्चों के हित में भी दान किया जा सकता है।

(ब) मृत्यु शैया दान— मृत्यु"यो दान को मृत्यु दान कहा जाता है। वह दान जो दानकर्ता अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व या उस समय करता है जबकि उसे यह आ"का रहती है कि अब उसकी मृत्यु होने वाली है, मृत्यु शैया दान कहलाता है।

अतः मृत्यु"यो दान किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु होने के समय किया जाता है। इस प्रकार का दान हिन्दू विधि में मान्य और प्रभावकारी होता है जबकि वह धार्मिक कार्यों के लिए किया गया हो।

जबकि किसी व्यक्ति द्वारा अपनी मृत्यु के समय दान किया जाता है और वह बाद में ठीक हो जाता है किन्तु आदाता की मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में किया गया दान शून्य होगा।

(स) सहभागीदार सम्पत्ति में सहभागीदार द्वारा दान— मिताक्षरा विधि में सिवाय एकमात्र उत्तरजीवी सहभागीदार के किसी अन्य सहभागीदार को अपनी सहभागीदारी सम्पत्ति में अपने हित को दान द्वारा हस्तान्तरित करने का अधिकार नहीं होता है।

कोई भी सहभागीदार हिन्दू चाहे पृथक् हो या संयुक्त परिवार का सदस्य हो, वह अपनी स्वार्जित या पृथक् सम्पत्ति उपहार दान में दे सकता है किन्तु उसे उस सम्पत्ति से अपने द्वारा पोषण पाने वाले व्यक्तियों का ध्यान रखना चाहिए और इसके लिए उसे अन्य सहभागीदारों से सहमति लेना अनिवार्य है। पिता अपनी चल सम्पत्ति को पुत्रों की सहमति में धार्मिक प्रयोजन के लिए दान में दे सकता है। एक हिन्दू कर्ता धार्मिक कार्यों के लिए पैतृक अचल सम्पत्ति को अपने सीमित अधिकारों के अन्तर्गत उपहार में दे सकता है।

कोई भी सहभागीदार द्वारा अपने भाग अथवा संयुक्त भाग को दान में नहीं दे सकता है, यदि सहभागीदार दान में ऐसी सम्पत्ति दे देता है तो यह समझा जायेगा कि उसने शेष बच सहभागीदारों के हक में अपनी संयुक्त सम्पत्ति का हिस्सा दान कर दिया है। जहाँ कि एक ही हिस्सेदार बचा रहता है वहाँ बचे हुए सहभागीदारों के हक में दान किया जा सकता है।

दान वसीयती व्ययन का स्वरूप नहीं ले सकता। सम्पत्ति में अविभक्त हित अथवा आ"का दान शून्य होता है किन्तु यदि अन्य सहदायिक इस आ"य की सहमति प्रदान कर देते हैं अथवा असामान्य परिस्थिति हो तो दान वैध हो सकता है।

इच्छापत्र या वसीयत— जब कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु के पूर्व अपनी समस्त चल एवं अचल सम्पत्ति को अपने परिवार में वितरित करने के लिए लिखित व्यवस्था करता है तो कहा जाता है कि उसने वसीयत की है। अतः वसीयत या इच्छापत्र किसी व्यक्ति की लिखित अथवा मौखिक घोषणा होती है जिसके द्वारा वह अपनी सम्पत्ति आदि की मृत्यु के प"चात् व्यवस्था की इच्छा प्रकट करता है।

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 3 में वसीयत को निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया गया है—

अतः वसीयत किसी व्यक्ति द्वारा की गई वह वैध घोषणा होती है जिसमें वह अपनी मृत्यु के प"चात् सम्पत्ति के सम्बन्ध में व्यवस्था करता है।"

"इच्छापत्र वसीयत लिखने वाले के द्वारा अपनी सम्पत्ति के सम्बन्ध में उस उद्देश्य से की गई एक विधिक घोषणा होती है जिसको वह अपनी मृत्यु के बाद सम्पन्न हुआ इच्छित करता है।"

इच्छापत्र द्वारा उत्तरदान की जाने वाली सम्पत्तियाँ—हिन्दू विधि के अन्तर्गत किसी भी व्यक्ति को अपनी उस सम्पत्ति को वसीयत में देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। जो वह अपनी जीवित अवस्था में दान द्वारा अन्य संक्रामित नहीं कर सकता था। दायभाग विधि के अन्तर्गत कोई भी सदस्य संयुक्त परिवार में अपना पूर्ण हिस्सा और पिता अपना पूर्ण हिस्सा इच्छापत्र द्वारा किसी व्यक्ति को दे सकता है। जबकि मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत कोई भी सहदायिक अपनी या संयुक्त परिवार की सम्पत्ति वसीयत कर सकता है।

मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत कोई हिन्दू इच्छापत्र द्वारा निम्नलिखित सम्पत्ति का परिवर्तन कर सकता है—

1. पृथक् तथा स्व-अर्जित सम्पत्ति
2. एकमात्र उत्तरजीवी सहदायिकों की अपनी सम्पत्ति
3. सौदायिका स्त्रीधन
4. विधवा-स्थिति में समस्त स्त्रीधन
5. अविभाज्य सम्पदा

कोई सहभागीदार चाहे वह पिता ही हो, अविभाजित सहभागीदारी हक को इच्छापत्र द्वारा निवर्तित नहीं कर सकता है।

दायभाग शाखा के अनुसार निम्नलिखित दो प्रकार की सम्पत्तियों को भी इच्छापत्र द्वारा निवर्तित किये जाने का उपबन्ध किया गया है—

1. सहदायिकी हक
2. पिता द्वारा स्व-अर्जित तथा पैतृक सम्पत्ति

इच्छापत्र सम्बन्धी सामान्य नियम— विधि में इच्छापत्र सम्बन्धी अन्य सामान्य नियम निम्नलिखित हैं—

Class -LL.B (HONS.) I SEM.

Subject - Family Law-I (Hindu Law)

- (1) किसी इच्छा-पत्र की व्याख्या में इच्छा-पत्र लिखने वाले का भाव देखना आवश्यक है तथा इच्छा-पत्र में प्रयुक्त शब्दों से यह निर्देशित किया जाना चाहिए कि उसका ऐसा उद्देश्य था। उद्देश्य का विवरण करने में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना आवश्यक है—
- (I) इच्छा-पत्र लिखने वाले की स्थिति।
(II) उसके पारिवारिक सम्बन्ध।
(III) शब्दों का प्रयोग किसी आवश्यक विषय में करने की सम्भावना।
(IV) उसकी जाति तथा धार्मिक मत।
(V) सम्पत्ति के न्यायगमन के सम्बन्ध में हिन्दुओं की सामान्य इच्छायें तथा भावनायें जैसे स्त्रियाँ दाय में अबोध एवं पूर्ण हक प्राप्त नहीं करती।
- (2) इच्छापत्र में उल्लिखित सम्पदा को विधि के प्रतिकूल नहीं होना चाहिए।
(3) हिन्दू विधि के अन्तर्गत वह व्यविता, जिसको दान अथवा इच्छापत्र द्वारा सम्पत्ति दी जाती है अस्तित्व में होना चाहिए।
(4) सम्पदा उल्लिखित हित के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए। यदि सम्पत्ति में इच्छापत्र द्वारा किसी व्यविता को निर्बाध अधिकार दिया गया है तो अन्य कोई ऐसी शर्त जो सम्पत्ति में उसके अधिकार पर किसी प्रकार का नियन्त्रण लगाती हो, निष्फल होगी। एक बार अबाधित स्वामित्व की सृष्टि हो जाने पर उसके विरुद्ध शर्तें स्वीकार नहीं की जायेंगी।
(5) इच्छापत्र द्वारा सदृश सम्पदा प्रदान की जा सकती है।
(6) यदि इच्छापत्र के अन्दर अवैध एवं अनैतिक शर्तें लगाई जाती हैं तो ऐसी शर्तें निष्प्रभावित होती हैं, किन्तु इच्छापत्र बाध्यकारी होता है।
(7) कोई भी इच्छापत्र अथवा इच्छापत्र का भाग यदि छल, कपट और बल से सम्पन्न कराया जाता है अथवा वसीयत की स्वतन्त्रता के अभाव में किया गया है तो ऐसा इच्छापत्र शून्य होता है।